इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
पर्यटन एवं आतिथ्य प्रबंध विद्यापीठ

बी.टी.एम.सी.–131

पर्यटन का इतिहास-I

खंड

5

खोज, नगरीकरण और समुद्री यात्राएँ

इकाई 14
खोज की अवधारणा 5

इकाई 15
वाराणसी का नगरीकरण 18

इकाई 16
रोमन साम्राज्य और नगरीकरण 31

इकाई 17
व्यापार मार्ग और समुद्री यात्राएँ 47

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें और शोध पत्र 63

इस खंड के लिए गतिविधियाँ 64

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम तैयार करने वाली सह पाठ्यक्रम–अनुकूलन टीम

प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
निदेशक
एसओटीएचएसएम, इग्नू, (अध्यक्ष)

डॉ. परोमिता शुक्लाबैद्या
सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम
इग्नू

डॉ. सोनिया शर्मा
सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम, इग्नू

सुश्री तांगजाखोम्बी अकोइजम
सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम
इग्नू

डॉ. अरविन्द कुमार दुबे
सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम
इग्नू (संयोजक)

कार्यक्रम समन्यवक : डॉ. अरविन्द कुमार दुबे

खण्ड समन्यवक	पाठ्यक्रम समन्यवक
डॉ. अरविन्द कुमार दुबे सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम	डॉ. अरविन्द कुमार दुबे डॉ सोनिया शर्मा

शिक्षक गण

प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
निदेशक

डॉ. परोमिता शुक्लाबैद्या
सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम

डॉ. अरविन्द कुमार दुबे
सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम

डॉ. हरकीरत बेंज
एसोसिएट प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम

डॉ. सोनिया शर्मा
सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम

सुश्री तांगजाखोम्बी अकोइजम
सहायक प्राध्यापक, एसओटीएचएसएम

पाठ्यक्रम निर्माण

इकाई संख्या	इकाई लेखक
14, 15, 16, 17	डॉ. अरविन्द कुमार दुबे सहायक प्रोफेसर, एसओटीएचएसएम, इग्नू

अनुवादक	वर्तनी शोधन एवं पुनरिक्षण	सहायक
श्री प्रांजल धर, कवि मीडिया विशेषज्ञ, अनुवादक न्यू राजेन्द्रनगर, नई दिल्ली	डॉ. सुरेश कुमार गोहे	श्री विनीत ज़ेस जेएटी, एसओटीएचएसएम इग्नू, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण दल

श्री तिलक राज सहायक कुल सचिव (प्रकाशन) एम.पी.डी.डी.,इग्नू, नई दिल्ली	श्री यशपाल अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन) एम.पी.डी.डी.,इग्नू, नई दिल्ली

सितम्बर, 2019

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, 2019

ISBN : 978-93-89499-34-6

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (चक्र मुद्रण) द्वारा या अन्यथा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के बारे में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के मैदान गढ़ी नई, दिल्ली – 110068 स्थित कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली की ओर से कुल सचिव एम.पी.डी.डी इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेज़र टाइपसेटर : टेसामीडिया एण्ड कंप्यूटर्स, सी–206, ए.एफ.ई.2, जामिया नगर, नई दिल्ली

मुद्रक : मैसर्स ए–वन ऑफसेट प्रिंटर्स, 5/34, कीर्ति नगर, इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली–110015 द्वारा मुद्रित।

खंड 5 खोज, नगरीकरण और समुद्री यात्राएँ

इस खंड में हमने विभिन्न प्रकार की खोजों और सम्बन्धित पर्यटन के रूपों की चर्चा की है। खण्ड में रोमन साम्राज्य और वाराणसी का नगरीकरण भी शामिल है। खोज का सम्बन्ध प्रख्यात अन्वेषणकर्ताओं द्वारा संचालित समुद्री यात्राओं से भी है और इसे भी यहाँ सम्मिलित किया गया है।

इकाई 14 यह इकाई आपको खोज की अवधारणा, इसकी प्रकृति और प्रक्रिया से परिचित कराती है। जिन स्थलों (प्राचीन) और नगरों को खोजा गया, वे भी इस इकाई में शामिल हैं। खोजे गए अधिकांश स्थल और नगर अब प्रमुख पर्यटन गन्तव्य हैं।

इकाई 15 यह इकाई नगरीकरण के भाव पर चर्चा करती है और इस पर भी प्रकाश डालती है कि वाराणसी को किस प्रकार नगरीकृत किया गया। प्राचीन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल में वाराणसी के नगरीकरण पर प्रकाश डाला गया है। वाराणसी के नगरीकरण को प्रभावित करने वाले समकालीन घटकों का भी उल्लेख किया गया है।

इकाई 16 यह इकाई आपको एक और अत्यधिक महत्वपूर्ण प्राचीन साम्राज्य यानी रोमन साम्राज्य से परिचित कराती है, जो नगरीकृत था। रोमन साम्राज्य का संक्षिप्त इतिहास, प्रशासन, नगरीय अवस्थापना, मनोरंजन के साधन और इस साम्राज्य के पतन के बारे में भी चर्चा की गयी है।

इकाई 17 यह इकाई विभिन्न व्यापार मार्गों और व्यावसायिक पर्यटन के दृष्टिकोण से इन व्यापार मार्गों के महत्व पर चर्चा करती है। आप क्रिस्टोफर कोलम्बस और वास्कोडिगामा द्वारा संचालित समुद्री यात्राओं के बारे में भी जानेंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 14 खोज की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 खोज और आविष्कार

14.3 खोज के प्रकार

- 14.3.1 विश्व की खोज
- 14.3.2 आध्यात्मिक खोज
- 14.3.3 भावनात्मक खोज
- 14.3.4 सम्बन्धों की खोज
- 14.3.5 वैज्ञानिक खोज
- 14.3.6 स्वयं की खोज
- 14.3.7 पाठक की खोज
- 14.3.8 बचपन की खोज
- 14.3.9 भौतिक खोज

14.4 खोज की प्रकृति

14.5 खोज की प्रक्रिया

14.6 खोज का महत्व

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि आप :

- जान सकें कि खोज शब्द का अर्थ क्या है;
- खोज और आविष्कार के बीच के अन्तर को समझ सकें;
- खोज के विभिन्न प्रकारों की पहचान कर सकें और खोज की प्रकृति को समझ सकें;
- खोज की प्रक्रिया को जान सकें; और
- खोज के महत्व का गुण-विवेचन कर सकें।

14.1 प्रस्तावना

खोज का तात्पर्य किसी ऐसी चीज का पता लगाने (अनावृत करने) से है जो संसार में पहले से ही विद्यमान थी लेकिन जिसका अब तक संज्ञान नहीं लिया गया था। इसका सम्बन्ध नवीन परिघटना, घटनाओं, स्थल, कार्य आदि से है। खोज प्राकृतिक रूप से घटित ऐसी घटनाओं का प्रतिनिधित्व करती है जिनमें अन्वेषण शामिल होता है – चाहे यह अन्वेषण सोद्देश्य रूप से किया गया हो या यह आकस्मिक रूप से घटित हुआ हो। कुछ नया करने

का जुनून, उत्कट आवश्यकता और इन सबसे बढ़कर तीव्र इच्छा ही समस्त खोजों की जननी है। अंग्रेजी साहित्य में उचित ही कहा गया है कि जहाँ चाह है, वहाँ राह है। अगर चाह यानी इच्छा तीव्र होगी तो किसी नयी चीज की खोज करने, उसका अन्वेषण करने, निर्माण करने और उसका सृजन करने की प्रेरक शक्ति भी बहुत मजबूत होगी और इस प्रेरक शक्ति के प्रभाव भी बहुत दूरगामी होंगे। अलग-अलग ज्ञानानुशासनों और क्षेत्रों में खोज शब्द का अर्थ अलग-अलग होता है। खोज को परिभाषित करने के लिए यह कहा जा सकता है कि यह किसी ऐसी चीज का सबसे पहले संज्ञान लेने की प्रक्रिया है जिसका अस्तित्व हमारे परिवेश में पहले से ही था लेकिन जिसका संज्ञान अब तक किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पहले नहीं लिया गया था। सारांशतः, किसी सूचना, स्थल, वस्तु या किसी चीज को सीखने का सबसे पहले पता लगाने के कार्य को खोज के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह अवधारणा इस तथ्य में भी निहित है कि खोज किसी चीज का सबसे पहले अनुभव करने की या उस चीज का दोबारा पता लगाने की कला है जो गुम हो गयी थी, भुला दी गयी थी, छिप गयी थी या नष्ट हो गयी थी।

14.2 खोज और आविष्कार

खोज (डिस्कवरी) और आविष्कार (इनवेंशन) में अन्तर है क्योंकि आविष्कार का सम्बन्ध किसी ऐसी प्रक्रिया या वस्तु (उपकरण या युक्ति) के अभिकल्पन (डिजाइन)/सृजन से है जिसका अस्तित्व पहले था ही नहीं। आविष्कार का तात्पर्य किसी ऐसी चीज का विकास करने से है जो मौलिक और उन्नत हो। आविष्कार किसी वैज्ञानिक या मानव-निर्मित ऐसी वस्तु के रूप में होता है जो समाज के लिए उपयोगी हो और जिसका आविष्कार प्रयोगों या विचारों के आधार पर किया गया हो। आविष्कार उन चीजों का होता है जिनका अस्तित्व था ही नहीं और इसका पेटेण्ट कराया जा सकता है। खोज का पेटेण्ट नहीं कराया जा सकता। उदाहरण के लिए, गुरुत्वाकर्षण पर सर आइजैक न्यूटन का कार्य एक खोज है, कोलम्बस द्वारा अमेरिका का पता लगाया जाना एक खोज है लेकिन टेलीफोन द्वारा संचार पर ग्राहम बेल का कार्य एक आविष्कार है। अपने दैनिक जीवन में हम जिन-जिन परिवर्तनों का अनुभव कर रहे हैं, वे परिवर्तन आविष्कारों और खोजों के कारण ही सम्भव हो सके हैं। आविष्कार और खोज ने हमारे जीवन, खानपान, कामकाज, परिवहन, संचार आदि के प्रतिमान को रूपान्तरित कर दिया है।

खोज की यह प्रक्रिया आकस्मिक और अनपेक्षित रूप से हो सकती है और कभी-कभार खोज की ये प्रक्रियाएँ चमत्कार, आवश्यकता और जिज्ञासा द्वारा घनीभूत की गयी सावधानीपूर्ण योजनाओं और जान-बूझकर किए गए प्रयासों के कारण उभरकर सामने आती हैं। इस प्रकार खोज प्रकृति में एकदम नयी चीज होती है और अनेक तरीके से इसका महत्व होता है; जैसे – भावनात्मक, सृजनात्मक, बौद्धिक, भौतिक और आध्यात्मिक तरीके से। खोज की यह प्रवृत्ति होती है कि वह हमें एक नए संसार, नए विचारों, निष्कर्षों, सूचना और नयी वस्तु से जोड़ती है और भविष्य के परिप्रेक्ष्य में इसके दूरगामी प्रभाव होते हैं। खोज और खोजने की यह कला हमारी अपनी चिन्तन प्रणाली और समझ के साथ-साथ दूसरों की चिन्तन प्रणाली और समझ को भी बदल सकती है। एक छोटा बच्चा जब पहली बार बाहर निकलता है तो वह घ्राण, स्पर्श और स्वाद के जरिये परिवेश की खोज करने की कोशिश करता है। इस प्रकार, खोजने की कला उसे सिखाती है कि बाह्य परिवेश से किस प्रकार सम्पर्क और अन्तरक्रिया की जाए। जिज्ञासा के एक परिणाम के रूप में यह बच्चे की सीखने की सहज प्रक्रिया पर दबाव डालती है। इसका महत्व इस तथ्य में भी निहित है कि बाह्य परिवेश के साथ इस तरीके के प्रत्यक्ष सम्पर्क पहचानयोग्य प्रतिमान का सृजन करने में बच्चे/खोजकर्ता की सहायता करते हैं और इस प्रकार इस नयी खोजी गयी जानकारी के प्रति एक समझ

पैदा करते हैं। इसलिए, खोजें व्यक्ति के साथ-साथ जनसमुदाय के जीवन में अनेक तरीकों से और अनेक स्तरों पर अपनी मुख्य भूमिका निभाती हैं; चाहे ये खोजें बुनियादी जानकारी, स्थल या किसी वस्तु के रूप में हों, या फिर वे सीखने के रूप में ही क्यों न हों।

बोध प्रश्न 1

1) "खोज" शब्द से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्या खोज और आविष्कार में कोई अन्तर है?

.....

.....

.....

.....

.....

14.3 खोज के प्रकार

खोजें अनेक प्रकार की होती हैं जिनका वर्णन नीचे किया गया है :

14.3.1 विश्व की खोज

नयी भूमि और नए स्थल को खोजने के उत्साह के कारण विश्व की खोज की अवधारणा सामने आयी। यद्यपि यह एक चुनौतीपूर्ण और खतरनाक कार्य था लेकिन इस मामले में कुछ साहसी समुद्री यात्री सर्वोत्तम और सफल नाविक सिद्ध हुए और परिणामस्वरूप पन्द्रहवीं शताब्दी में कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज की गयी जिसे उसने एक नया विश्व कहा। अतः, इसके कारण अब विश्व के नए मानचित्रण की आवश्यकता उत्पन्न हुई। साहसिक पर्यटन, ऐतिहासिक पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन, शैक्षिक पर्यटन, विरासत पर्यटन, जन पर्यटन, भू-पर्यटन, चरम पर्यटन, वन्यजीव पर्यटन, जंगली (निर्जन) पर्यटन आदि विश्व की खोज से सम्बन्धित हैं।

यात्रा और पर्यटन के दृष्टिकोण से, एक प्रमुख कारक संसार के उन प्राचीन नगरों की खोज से सम्बन्धित है जो अब गुम हो चुके हैं। क्या इन नगरों का परित्याग कर दिया गया था, क्या ये नगर डूब गए थे, नष्ट हो गए थे या निर्जन हो गए थे? इन नगरों को भुला दिया गया था और ये तब तक बिखरे हुए ऐतिहासिक दस्तावेजों में छिपे हुए थे, जब तक किसी इतिहासकार या घुमक्कड़ ने इनके अवशेषों को खोज नहीं लिया। ऐसे कुछ गुम नगरों के उदाहरण, जिन्हें खोज लिया गया, निम्नलिखित हैं :

1) **मोहनजोदड़ो :** वर्तमान में यह पाकिस्तान के सिन्ध में अवस्थित है। इसकी खोज भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (एएसआई) के एक अधिकारी आर. डी. बनर्जी द्वारा सन्

1922 में की गयी थी। यह सिन्धु घाटी सभ्यता के विशालतम सुनियोजित नगरों में से एक था और स्नानागार, पश्चिमी शौचालय, गलियों के प्रतिमान और पकी हुई ईंटों आदि के लिए प्रसिद्ध था।

2) **तक्षशिला :** इसकी वर्तमान अवस्थिति पाकिस्तान के रावलपिण्डी में है। इसकी खोज सर अलेक्जेण्डर कनिंघम द्वारा की गयी थी। भारत के और विदेश के अनेक साहित्यिक स्रोतों में इसके नाम का उल्लेख है। तक्षशिला कुषाण काल में भारत का विशालतम शिक्षा केन्द्र था।

3) **कालीबंगा :** इसकी वर्तमान अवस्थिति राजस्थान के हनुमानगढ़ में है। यहाँ अग्निवेदियाँ और संसार का प्राचीनतम जुता हुआ खेत मिला है, जिनके कारण यह प्रसिद्ध है।

4) **लोथल :** इसकी वर्तमान अवस्थिति गुजरात के अहमदाबाद के सरगवाला गाँव के निकट है। मुख्यतः यह बन्दरगाह और सुव्यवस्थित नगर नियोजन के लिए प्रसिद्ध है।

5) **द्वारका :** इसकी वर्तमान अवस्थिति गुजरात (अरब सागर) में है। यह भगवान कृष्ण से सम्बन्धित नगर है। यह उन प्राचीन नगरों में से एक है जो गुम हो गए थे और डूब गए थे। समुद्री पुरातत्वविद ने द्वारका नगर के अवशेषों को खोज निकाला, जिसका इतिहास अतीत में पन्द्रहवीं शताब्दी ई.पू. तक जाता है।

6) **भीमबेटका की गुफाएँ (शैलाश्रय) :** यह मध्य प्रदेश में भोपाल से लगभग 45 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इसके अन्तर्गत सात पहाड़ियाँ आती हैं जिनमें लगभग 750 शैलाश्रय शामिल हैं जो दस किलोमीटर तक फैले हुए हैं। यह यूनेस्को का एक विश्व विरासत स्थल है और यहाँ पूर्व-ऐतिहासिक काल के चित्र मौजूद हैं। इन चित्रों से मानव बस्तियों, सांस्कृतिक विकास और शिकारी संग्राहक से कृषि अवस्था तक की अभिव्यक्ति के प्रमाण प्राप्त होते हैं। इसकी खोज पुरातत्वविद वी. एस. वाकनकर द्वारा सन् 1957 में की गयी थी।

7) **साँची :** ब्रिटिश जनरल हेनरी टेलर सन् 1818 में साँची आए थे और इस स्थल को ऐतिहासिक स्थल के रूप में दर्ज किया था। इसकी पुनर्स्थापना का कार्य भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक सर जॉन मार्शल के मार्गनिर्देशन में किया गया। यह यूनेस्को का एक विश्व विरासत स्थल है।

8) **अजन्ता :** अजन्ता की गुफाओं की खोज जॉन स्मिथ नामक एक ब्रिटिश अधिकारी द्वारा सन् 1819 (28 अप्रैल) को तब की गयी थी जब वह चीते के शिकार पर निकला हुआ था। गुफा संख्या 10 के प्रवेशद्वार की खोज उसने एक स्थानीय चरवाहे लड़के के मार्गनिर्देशन में की थी जिसे गुफा के द्वार के अस्तित्व की जानकारी थी (स्थानीय लोगों को गुफा की उपस्थिति की जानकारी थी)।

अजन्ता गुफाएँ महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में स्थित हैं। चट्टानों को काटकर बनायी गयी ये 30 बौद्ध गुफाएँ दूसरी शताब्दी ई.पू. से 480 ई. के बीच के काल की हैं और इनमें चित्रों के साथ-साथ चट्टान काटकर की गई मूर्तिकला भी मौजूद है। अजन्ता की गुफाएँ प्राचीन भारतीय कला और स्थापत्य के उत्कृष्टतम उदाहरण हैं जो आज तक अस्तित्वमान हैं। विशेषतौर पर इन गुफाओं के अभिव्यक्तिपरक चित्र उल्लेखनीय हैं जिनमें भावनाओं को रूप, मुद्रा, स्थिति, रंग और त्रिविमीय प्रभावों द्वारा दर्शाया गया है। यह यूनेस्कों द्वारा सूचीबद्ध एक विश्व विरासत स्थल है।

9) **विदिशा (हेलियोडोरस स्तम्भ) :** यह स्तम्भ पत्थर के एक खम्भे के रूप में है जिसे हेलियोडोरस ने स्थापित किया था (113 ई.पू.)। हेलियोडोरस शुंग शासक भागभद्र के दरबार में यूनान का राजदूत था। वर्तमान में पत्थर का यह स्तम्भ मध्य प्रदेश के विदिशा में अवस्थित है जो भोपाल से लगभग 60 किलोमीटर दूर है। स्थानीय लोग इस स्तम्भ को खम्भा बाबा या खम्बाबा कहते हैं।

हेलियोडोरस के इस स्तम्भ की खोज सन् 1877 ई. में ए. कनिंघम द्वारा बेसनगर के प्राचीन नगर की पहाड़ी पर की गयी थी। इसके शिलालेख की खोज बाद में जॉन मार्शल द्वारा की गयी थी।

10) **खजुराहो के मन्दिर :** खजुराहो के मन्दिरों का समूह मध्य प्रदेश में स्थित है (झाँसी से 175 किलोमीटर दूर)। अभिलेख के अनुसार यहाँ लगभग 84 मन्दिर स्थित थे लेकिन जब ब्रिटिश भारतीय सेना के कप्तान टी. एस. बर्ट ने सन् 1838 में इसकी दोबारा खोज की थी तब यहाँ केवल 22 मन्दिरों का ही अस्तित्व था। इन 22 मन्दिरों को तीन समूहों में विभाजित किया गया है – मन्दिरों का पश्चिमी समूह, मन्दिरों का पूर्वी समूह और मन्दिरों का दक्षिणी समूह। यहाँ कोई व्यक्ति हिन्दू और जैन मन्दिरों के दर्शन कर सकता है। यह यूनेस्को का एक विश्व विरासत स्थल है। इसका निर्माण चन्देलों के शासनकाल के दौरान किया गया था।

11) **नैनी झील और मसूरी :** हिमालय और दक्षिणी भारत में अनेक पर्वतीय स्थलों और अनोखे दृश्यों वाले क्षेत्रों की खोज ब्रिटिश सेनाधिकारियों, अभियन्ताओं और व्यापारियों द्वारा की गयी थी। नैनी झील की खोज चीनी के एक व्यापारी और एक अभियन्ता द्वारा सन् 1839 में की गयी थी। चीनी का वह व्यापारी मिस्टर बैरन शाहजहाँपुर जिले के आसपास का रहने वाला था और उन्होंने नैनी झील की खोज तब की थी, जब वे शिकार के आनन्द पर बाहर निकले हुए थे। इसी प्रकार मसूरी के क्षेत्र की खोज और स्थापना कैप्टन यंग (छावनी कमाण्डर) और मेरठ के एक अंग्रेज व्यवसायी द्वारा की गयी थी। उस व्यापारी ने सन् 1830 में मसूरी में एक मद्यनिर्माणशाला खोली थी।

12) **विजयनगर :** यह कर्नाटक के हम्पी में अवस्थित है। हम्पी का सम्बन्ध विजयनगर साम्राज्य से है। रामायण में इस स्थल का उल्लेख किष्किन्धा नाम से किया गया है जो वानर सम्राटों का राज्य था।

इसी तरह सम्पूर्ण विश्व में बहुत सारे ऐसे स्थल (गुम हो चुके नगर) हैं जिन्हें पुरातत्वविदों, घुमक्कड़ों और सेनाधिकारियों द्वारा खोजा गया है। ऐसी एक सूची नीचे दी गयी है :

i) **चारल (Caral):** सूपे घाटी, पेरू (अमरीकी महाद्वीप में प्राचीनतम नगरीय केन्द्र)

ii) **माचू पिचू** : कुस्को क्षेत्र, पेरू (इंका सभ्यता)

iii) **गोबेकली टेपे** : तुर्की (वृत्ताकार और अण्डाकार संरचना, मन्दिर)

iv) **ट्रॉय** : कनाक्कले प्रान्त, तुर्की (यूनानी आख्यानों में वर्णित)

v) **कलाकमुल** : कम्पेचे, मेक्सिको (स्नेक राज्य, दो संलग्न पिरामिडों का नगर)

vi) **लैगुनिटा** : यूकाटन प्रायद्वीप, मेक्सिको (माया सभ्यता)

vii) **मेसा वर्डे** : दक्षिण-पश्चिमी कोलोराडो, संयुक्त राज्य अमेरिका (खड़ी चट्टान पर बना महल, पैतृक पुरातात्विक स्थल)

viii) **स्कारा ब्रे** : ओर्कने, स्कॉटलैण्ड (पाषाण-निर्मित नवपाषाणकालीन बस्ती)

ix) **पोम्पेई** : नैपल्स का प्रान्त, कैम्पेनिया जिला, इटली (नष्ट हो चुका और ज्वालामुखी की राख के नीचे दबा हुआ रोमन साम्राज्य)

x) **लेप्टिन मैग्ना** : खोम्स, लीबिया (रोमन नगर)

xi) **हेलिके** : यूनान (सुनामी के कारण डूब गया)

xii) **हेराक्लीन** : सिकन्दरिया (अलेक्जेण्ड्रिया), मिस्र (भूमिगत जल से जुड़े पुरातत्वविद द्वारा खोजा गया)

xiii) **पेट्रा** : जॉर्डन (अन्वेषणकर्ता द्वारा खोजा गया, अरब लोगों द्वारा पराजित किया गया)

14.3.2 आध्यात्मिक खोज

किसी व्यक्ति द्वारा अपने भीतर के आत्म की खोज को आध्यात्मिक खोज कहा जाता है। सच्चे अर्थों में अपने आत्म के अस्तित्व की अनुभूति ही आध्यात्मिक खोज है। यह अपने भीतर के स्थान या आवाज का अनुभव करना है और यह अहं यानी 'मैं' की अवधारणा को समाप्त करने के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करता है। आध्यात्मिक खोज के कई मार्ग हैं; जैसे – आत्मसिद्धि, किसी आध्यात्मिक गुरु की सहायता लेना, योगाभ्यास और ध्यान करना आदि। यात्रा और पर्यटन के दृष्टिकोण से, आध्यात्मिक पर्यटन, धार्मिक पर्यटन, तीर्थयात्रा, अनुभूतिमूलक पर्यटन, विरासत और सांस्कृतिक पर्यटन, योग पर्यटन, ध्यान पर्यटन आदि पर्यटन के ऐसे रूप हैं जो आध्यात्मिक खोज से प्रत्यक्षतः जुड़े हुए हैं।

14.3.3 भावनात्मक खोज

यह ऐसी खोज है जो किसी व्यक्ति के भौतिक और मनोवैज्ञानिक विचारों और व्यवहारों में आने वाले परिवर्तनों की पहचान करने से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए, हम जब भी किसी चीज की खोज करते हैं तो उस समय हमारे मन की अवस्था क्या होती है? हम घटित होने वाली घटनाओं पर किस तरीके से प्रतिक्रिया देते हैं? यह एक आनन्ददायक क्षण हो सकता है, इसके नकारात्मक प्रभाव के विश्लेषण के सम्बन्ध में दुख का क्षण हो सकता है, प्रकोप या ईर्ष्या का क्षण हो सकता है। मित्रों और सगे-सम्बन्धियों के पास जाना (वीएफआर), मेले और उत्सव, सामाजिक पर्यटन, अनुभूतिमूलक पर्यटन, नृ-जातीय पर्यटन, विरासत और सांस्कृतिक पर्यटन और ऐतिहासिक पर्यटन आदि पर्यटन के ऐसे रूप हैं जो भावनात्मक खोज में सहायक हैं।

14.3.4 सम्बन्धों की खोज

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो अनेक पहलुओं में अपने आन्तरिक और बाह्य परिवेश के साथ अन्तरक्रिया करता है। यह खोज हमें ऐसे विभिन्न संघटकों को पहचानने का एक अवसर प्रदान करती है जो हमसे प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः जुड़े हुए हैं और यह खोज हमारे दैनिक जीवन में इन संघटकों के योगदान का विश्लेषण करती है। चाहे यह संघटक बाह्य जगत हो जहाँ हम अपनी अस्तित्वरक्षा के लिए पर्यावरण के साथ अन्तरक्रिया करते हैं, चाहे यह हमारा कार्यस्थल हो जहाँ हम निर्धारित कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं और अपनी भूमिकाएँ निभाते हैं या फिर यह हमारा परिवार और सगे-सम्बन्धी ही क्यों न हो जिनके साथ हम संचार करते हैं और संसाधनों को साझा करते हैं। इसलिए, व्यापक अर्थों में सम्बन्धों की खोज उस संघटक को पहचानने का अवसर प्रदान करती है जो मैत्रीपूर्ण, स्वस्थ, आरामदायक और सुखदायक हो तथा जीवन में दूरगामी लाभों के लिए योगदान देता हो। मित्रों और सगे-सम्बन्धियों के पास जाना (वीएफआर), पर्यावरणीय पर्यटन, नृ-जातीय पर्यटन, विरासत और सांस्कृतिक पर्यटन, सामाजिक पर्यटन और जन्म पर्यटन आदि इस तरीके की खोज के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं।

14.3.5 वैज्ञानिक खोज

यह विज्ञान से सम्बन्धित खोज है और पहचान, प्रेक्षण, प्रयोग, जाँच, सैद्धान्तिक विकास आदि जैसे चरण इस खोज में शामिल हैं। यह सफल वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल की कला है जिसका प्रारम्भ नई परिकल्पना के विकास, आँकड़ा-संग्रहण और व्याख्या से होता है और अन्त में ऐसे व्युत्पन्न सामने आते हैं जिनका अन्तिम निष्कर्ष के लिए परीक्षण किया जाना होता है। वैज्ञानिक खोजों का केन्द्रीय विषय कुछ भी हो सकता है; जैसे – प्रसन्नता, घटनाएँ, कारण और प्रभाव, सम्पत्तियाँ आदि। वैज्ञानिक संग्रहालय, शैक्षिक पर्यटन, अनुभूतिपरक पर्यटन, अन्तरिक्ष पर्यटन, सृजनात्मक पर्यटन और चिकित्सकीय पर्यटन आदि पर्यटन के कुछ ऐसे रूप हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वैज्ञानिक खोज से जुड़े हुए हैं।

14.3.6 स्वयं की खोज

जैसाकि इसके नाम से ही स्पष्ट है, स्वयं की खोज किसी व्यक्ति के आत्म का अन्वेषण है। स्वयं या आत्म की खोज का अर्थ अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग होता है। यह खोज प्राथमिक रूप से इस सन्दर्भ में अपने भीतर झाँकने से सम्बन्धित है कि विद्यमान क्षमता क्या है, इसके द्वारा धारित किया गया चरित्र क्या है, किस तरीके की प्रेरणा की आवश्यकता है, आदि। शक्ति, कमजोरी, भ्रम, गलतफहमी और सन्देह आदि का विश्लेषण करते हुए यह खोज इस मानव जीवन के पीछे के उद्देश्यों को भी साझा करती है। योग पर्यटन, स्वास्थ्य पर्यटन, कल्याण पर्यटन, आध्यात्मिक पर्यटन, अनुभूतिपरक पर्यटन, आयुर्वेदिक पर्यटन, सृजनात्मक पर्यटन, शैक्षिक पर्यटन, जन्म पर्यटन और नृ-जातीय पर्यटन आदि पर्यटन के ऐसे प्रकार हैं जो स्वयं की खोज करने में सहायक हैं।

14.3.7 पाठक की खोज

आमतौर पर यह देखा गया है कि हम कोई पुस्तक केवल तभी पढ़ते हैं जब हमें जानकारी की जरूरत होती है। पाठक की खोज भी अलग-अलग आवश्यकताओं पर आधारित है; जैसे– किसी उपन्यास को साहित्य का कोई विद्यार्थी इसलिए पढ़ता है कि वह रूपकों को समझ सके, कोई नौसिखिया उसमें अपने लेखन के लिए केन्द्रीय विषय खोजता है, कोई अनुसन्धानकर्ता विद्यमान साहित्य के माध्यम से अनुसन्धान की समस्या का पता लगाने की कोशिश करता है या समस्या के लिए स्थायी हल प्राप्त करने का प्रयास करता है, इत्यादि। विरासत और सांस्कृतिक पर्यटन, व्यवसाय पर्यटन, पाक-कला पर्यटन, शैक्षिक पर्यटन, अनुभूतिपरक पर्यटन और सृजनात्मक पर्यटन आदि पाठक की खोज से सम्बन्धित हैं।

14.3.8 बचपन की खोज

अनुसन्धानकर्ताओं ने दर्शाया है कि बचपन की खोज के तीन प्राथमिक चरण होते हैं – प्रारम्भिक बचपन, मध्यकालिक बचपन और किशोरावस्था। सामान्य तौर पर बचपन की खोज जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है, खेलकूद और मासूमियत के दौरान विकसित होती है तथा किशोरावस्था में इसका समापन हो जाता है। प्रारम्भिक बचपन की खोज अपना मुख्य ध्यान अन्वेषण, प्रेक्षण के जरिये सीखने, प्रयोग करने और परिवेश के साथ संचार करने पर केन्द्रित करती है। मध्यकालिक बचपन का सरोकार बच्चे और देखभालकर्ता के बीच के भावनात्मक जुड़ाव को स्थापित करने की खोजों से है। किशोरावस्था की खोज नए ज्ञान और कौशलों के साथ-साथ सामाजिक और मानसिक विकास पर चर्चा करती है। जन्म पर्यटन, नृ-जातीय पर्यटन, शैक्षिक पर्यटन, सृजनात्मक पर्यटन, अनुभूतिपरक पर्यटन, सामाजिक पर्यटन तथा विरासत और सांस्कृतिक पर्यटन आदि बचपन की खोज में सहायक हैं।

14.3.9 भौतिक खोज

भौतिक खोज भीतर के आत्म और बाहर के पर्यावरण, दोनों, से सम्बन्धित है। भीतर के आत्म की खोज किसी व्यक्ति को अपनी शक्ति और क्षमता आदि के मूल्यांकन के लिए एक अवसर प्रदान करती है जबकि बाह्य पर्यावरण का प्राथमिक सरोकार प्रकृति के भौतिक सौन्दर्य के अन्वेषण से है; जैसे - भूदृश्य, वनस्पति और जीव-जन्तु, नदी, पर्वत और घाटी आदि से। ये सारी भौतिक खोजें परिचित मानवीय गतिविधि का अंग हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकती हैं। साहसिक पर्यटन, निर्जन पर्यटन, खेल पर्यटन, चरम पर्यटन, अन्तरिक्ष पर्यटन, समुद्री पर्यटन, वन्यजीव पर्यटन, पर्यावरणीय पर्यटन और सृजनात्मक पर्यटन आदि पर्यटन के कुछ ऐसे रूप हैं जिनका प्रवर्तन भौतिक खोज पर निर्भर होता है।

बोध प्रश्न 2

1) यात्रा और पर्यटन उद्योग के लिए विश्व की खोज सर्वाधिक प्रासंगिक क्यों है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) खोज के प्रकारों को पर्यटन के रूपों से आप किस प्रकार सम्बन्धित कर सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) बचपन की खोज और भौतिक खोज क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 खोज की प्रकृति

खोज की प्रख्यात प्रकृति पर नीचे चर्चा की गयी है :

1) **पहली बार खोजी गयी या दुबारा खोजी गयी :** सभी खोजें पहली बार ही खोजी जाती हैं और इसीलिए उन्हें एक नयी खोज माना जाता है। खोज अपने अस्तित्व से परे जाकर घटित होती है। यह सम्भव है कि किसी व्यक्ति ने कोई खोज की हो, तब भी उसी खोज में आगे किसी विकास की सम्भावना बनी रहती है। इसलिए भविष्य में किए जाने वाले विकास के बारे में अटकलबाजी या कयास बना रहता है।

2) **अचानक और अनपेक्षित :** कुछ खोजें ऐसी होती हैं जो अचानक या अनपेक्षित आदत, व्यवहार, घटना आदि के कारण सामने आ जाती हैं।

3) **सावधानीपूर्ण और जान-बूझकर बनायी गयी योजनाएँ :** कुछ खोजें ऐसी होती हैं जो सावधानीपूर्ण और जान-बूझकर बनायी गयी योजनाओं का परिणाम होती हैं क्योंकि ऐसी खोजें कुछ निश्चित तरीके की आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूरा करती हैं।

4) **जिज्ञासा, आश्चर्य और सृजनात्मकता का परिणाम :** समस्त प्रायोगिक खोजें जिज्ञासा, आश्चर्य और सृजनात्मकता का परिणाम होती हैं।

5) **आवश्यकता आधारित खोज :** कुछ निर्धारित तरीके की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए की जाने वाली खोजें, चाहे यह व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूर्ण करती हों या जनसमुदाय की। इन खोजों को सार्थक खोजों के रूप में देखा जाता है।

6) **भावनात्मक और बौद्धिक प्रयास :** समाज के विकास और मनोवैज्ञानिक पहलुओं से सम्बन्धित खोजों के लिए भावनात्मक स्पर्श देने की और तत्पश्चात बौद्धिक अनुप्रयोगों की जरूरत होती है।

7) **हमें नयी दुनिया की ओर ले जाने वाली :** खोजें हमें विकास का मार्ग दिखाती हैं तथा प्राचीन विकासों और नवीन विकास के बीच सेतु का कार्य करती हैं। इस प्रकार ऐसी खोज हमें नयी दुनिया की तरफ जाने का एक अवसर प्रदान करती है।

8) **खोजों का पुनर्मूल्यांकन :** सभी खोजों के लिए यह आवश्यक होता है कि उनका मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन किया जाए ताकि उन खोजों के प्रभाव की जाँच की जा सके। पुरानी खोजों की जगह पर नयी खोजों को आना चाहिए।

9) **वैयक्तिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक सन्दर्भों और मूल्यों के अनुसार परिवर्तित होने वाली :** खोज की प्रक्रिया कोई सरल परिघटना नहीं है बल्कि यह वैयक्तिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक कारकों से प्रभावित होती है। जब तक ये कारक मौजूद नहीं होंगे, तब तक खोज के लिए अभिप्रेरण को उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

14.5 खोज की प्रक्रिया

खोज की प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों का अनुसरण करती है :

1) **प्रेक्षण करना :** प्रेक्षण करने का तात्पर्य है सतत निगरानी करने, सुनने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने के माध्यम से ध्यान देना। सूचना का यह स्रोत एक आम स्रोत है और प्रत्येक मनुष्य इसे वरीयता देता है। प्रेक्षक जब प्रेक्षण-प्रक्रिया में रत रहता है तो खोजें उसके विश्लेषणात्मक कौशलों को विकसित कर सकती हैं।

2) **वर्गीकरण करना :** अगले क्रम पर वर्गीकरण करना आता है। इसका तात्पर्य प्रेक्षण के दौरान प्राप्त तत्वों का समूह बनाने से है। ये समूह बुनियादी सम्बन्ध के प्रतिमान पर आधारित होते हैं। जब एक नए संघटक की खोज की जाती है तो उसकी प्रकृति की पहचान करके उसे विशिष्ट नाम वाले समूह में सूचीबद्ध कर दिया जाता है।

3) **मापन करना :** यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें परिकल्पना-निर्माण, आँकड़ा-संग्रहण, इसका विश्लेषण और आँकड़ों की व्याख्या करते हुए भविष्यवाणी करने की प्रक्रिया शामिल रहती है। सबसे अधिक सावधानी की आवश्यकता इस सन्दर्भ में होती है कि एकत्रित की गयी सूचना परिशुद्ध हो और आवश्यकता-आधारित हो।

4) **अनुमान करना :** अनुमान निकालने की प्रक्रिया आँकड़ा-विश्लेषण यानी ज्ञान और सूचना वाले भाग के परिणाम वाले हिस्से से जुड़ी हुई है। अनुमान करने के दो तरीके हैं : आगमनात्मक और निगमनात्मक। आगमनात्मक तरीका विशिष्ट से सामान्य की तरफ आगे बढ़ने पर केन्द्रित है जबकि निगमनात्मक तरीका सामान्य से विशिष्ट की तरफ आगे बढ़ने से सम्बन्धित है।

14.6 खोज का महत्व

मानव सभ्यता के लिए खोज अपरिहार्य हो चुकी है। यह मनुष्यों को एक दिशा प्रदान करती है ताकि वे प्रगति कर सकें। इसने अनेक तरीकों से अपना योगदान दिया है; जैसे दृ सुविधा और आराम के लिए तकनीकी उपलब्ध कराके, संचार करने के लिए संचार साधनों को मुहैया कराके, अधिक आर्थिक और वाणिज्यिक गतिविधियों को उत्पन्न करने के लिए नयी दुनिया उपलब्ध कराके, अनेक गन्तव्यों को उपलब्ध कराके ताकि अनेक ऊबे हुए पर्यटक आनन्द ले सकें और अपना मनोरंजन कर सकें आदि। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि न सिर्फ मनुष्य की अस्तित्व-रक्षा में खोज की भूमिका महत्वपूर्ण होती है बल्कि दुनिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए भी खोज की भूमिका उल्लेखनीय है। हालाँकि, खोज अनेक तरीकों और स्तरों पर व्यापक भूमिका निभाती है, जिसका वर्णन निम्निलिखित है :

1) **अभिप्रेरण को बढ़ाती है :** खोज खोजकर्ता को और अधिक क्षेत्रों में अन्वेषण के लिए प्रेरित करती है क्योंकि खोज की प्रक्रिया अकेली नहीं होती, बल्कि यह अनेक चरणों में अन्तरगुंथित होती है। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पश्चात परिणाम को पूर्ण करने के लिए अगले चरण की आवश्यकता पड़ती है।

2) **स्वायत्तता और स्वतन्त्रता :** खोज खोजकर्ता को अपने अनुसार किसी क्षेत्र में अन्वेषण करने की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता प्रदान करती है। अगर खोजकर्ता प्रतिबन्धों से घिरा होगा तो शायद वह परिणाम की तरफ उन्मुख नहीं हो सकेगा।

3) **कुछ नया :** खोजकर्ता दुनिया में सदैव किसी नयी चीज का योगदान देता है। ऐसी खोजों के दौरान, खोजकर्ता इस विश्व को इसकी बेहतरी के लिए सदैव कुछ नया प्रदान करता है। इसे इस प्रकार देखा जा सकता है कि जब नए विश्वों की खोज की गयी तो इसके साथ ही साथ व्यापार और वाणिज्य के लिए नए मार्गों का भी पता लगाया गया और इस प्रकार विभिन्न देशों के बीच सम्पर्क स्थापित करने के रास्ते खुले।

4) **आत्मविश्वास का विकास :** खोज के कारण खोजकर्ता में आत्मविश्वास का संचार होता है क्योंकि यह कमियों पर विजय हासिल करने के रास्ते खोलती है और कोई खोजकर्ता जब खोज कर रहा होता है तो उसे भय और निराशा जैसी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों पर विजय तभी पायी जा सकती है जब आत्मविश्वास हो।

5) **अध्यात्मवाद :** यह आत्म की खोज का एक विषय है क्योंकि यह केवल तभी आता है जब कोई व्यक्ति मूल्यवान लाभों और हानियों के आधार पर अपने जीवनकाल का अनुभव करता है। भावनाओं, इच्छाओं, शक्ति, कमजोरी, योग्यताओं और सद्गुणों आदि की खोज के लिए जीवन स्वयं अवसर प्रदान करता है। जब अध्यात्मवाद के ऐसे गुण स्वयं में खोज लिए जाते हैं तो आत्मा निर्मल हो जाती है तथा कष्ट और पीड़ा के सभी क्षण और समस्त लौकिक इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं।

बोध प्रश्न 3

1) खोज की प्रकृति का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) खोज की प्रक्रिया क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) खोज के महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

14.7 सारांश

खोज किसी ऐसी चीज का सबसे पहले अनुभव करने की या उसे अनावृत करने की कला है जिसका अस्तित्व हमारे परिवेश में पहले से ही था लेकिन जिसका संज्ञान अब तक किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पहले नहीं लिया गया था। खोज हमें एक नए संसार, नए विचारों, निष्कर्षों, सूचना और नयी वस्तु से जोड़ती है और भविष्य के परिप्रेक्ष्य में इसके दूरगामी प्रभाव होते हैं। खोज प्राकृतिक रूप से घटित ऐसी घटनाओं का प्रतिनिधित्व करती है जिनमें अन्वेषण शामिल होता है - चाहे यह अन्वेषण सोद्देश्य रूप से किया गया हो या यह आकस्मिक रूप से घटित हुआ हो। खोज (डिस्कवरी) और आविष्कार (इनवेंशन) में अन्तर है क्योंकि आविष्कार किसी वैज्ञानिक या मानव-निर्मित ऐसी वस्तु के रूप में होता है जो समाज के लिए उपयोगी हो और जिसका आविष्कार प्रयोगों या विचारों के आधार पर किया गया हो। आविष्कार का पेटेण्ट कराया जा सकता है लेकिन खोज का पेटेण्ट नहीं कराया जा सकता। अपने दैनिक जीवन में हम जिन-जिन परिवर्तनों का अनुभव कर रहे हैं, वे परिवर्तन आविष्कारों और खोजों के कारण ही सम्भव हो सके हैं। इन आविष्कारों और खोजों ने हमारे जीवन, खानपान, कार्य-संस्कृति, परिवहन-संजाल और संचार-तकनीक के प्रतिमानों को रूपान्तरित कर दिया है। खोज के विभिन्न प्रकार होते हैं जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध पर्यटन के विभिन्न रूपों से है। खोज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकार "विश्व की खोज" है, जिसका सम्बन्ध दुनिया के प्राचीन और गुम हो चुके नगरों की खोज से है। इन नगरों का परित्याग

कर दिया गया था, ये डूब गए थे, नष्ट हो गए थे या निर्जनता में गुम हो गए थे, जब तक कि इन्हें किसी इतिहासकार, घुमक्कड़ या सेनाधिकारी ने इनके अवशेषों को खोज नहीं निकाला।

सभी खोजें पहली बार ही खोजी जाती हैं और इसीलिए उन्हें एक नयी खोज माना जाता है। खोज अपने अस्तित्व से परे जाकर घटित होती है। कुछ खोजें अचानक और अनपेक्षित होती हैं, कुछ सुनियोजित और जान-बूझकर की जाती हैं और कुछ जिज्ञासा और आवश्यकता का परिणाम होती हैं। खोज की प्रक्रिया कोई सरल परिघटना नहीं है बल्कि यह वैयक्तिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक कारकों से प्रभावित होती है। खोज में प्रेक्षण, वर्गीकरण, मापन और अनुमान करने की प्रक्रिया शामिल होती है। इसने अनेक तरीकों से अपना योगदान दिया है; जैसे – सुविधा और आराम के लिए तकनीकी उपलब्ध कराके, संचार करने के लिए संचार साधनों को मुहैया कराके, अधिक आर्थिक और वाणिज्यिक गतिविधियों को उत्पन्न करने के लिए नयी दुनिया उपलब्ध कराके, अनेक गन्तव्यों को उपलब्ध कराके ताकि अनेक ऊबे हुए पर्यटक आनन्द ले सकें और अपना मनोरंजन कर सकें आदि।

खोज नए क्षेत्रों का अन्वेषण करने के लिए प्रेरणा देती है और खोजकर्ता को अपनी इच्छानुसार अन्वेषण करने की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता प्रदान करती है। यह दुनिया में सदैव किसी नयी चीज का योगदान देती है क्योंकि जब नए विश्वों की खोज की गयी तो इसके साथ ही साथ व्यापार और संचार के लिए नए मार्गों की भी खोज की गयी। खोज की प्रक्रिया में खोजकर्ता को अनेक चुनौतियों और भय का सामना करना पड़ता है जिस पर केवल तभी विजय प्राप्त की जा सकती है जब आत्मविश्वास हो और आध्यात्मिक लाभ/सन्तुष्टि हो।

समग्रता में निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि खोज एक गत्यात्मक और सतत प्रक्रिया है और इसे किसी भी कीमत पर रोका नहीं जाना चाहिए। आज हमारी बारी है, कल अगली पीढ़ी की बारी होगी; आवश्यकता उन्हें प्रत्येक स्तर पर सहयोग प्रदान करने की और खोज की स्वतन्त्रता उपलब्ध कराने की है ताकि वे श्रेष्ठता हासिल कर सकें।

14.8 शब्दावली

खोज : किसी ऐसी चीज का पता लगाना जिसका अब तक संज्ञान नहीं लिया गया था लेकिन जिसका अस्तित्व दुनिया में था।

आविष्कार : किसी ऐसी वस्तु, उपकरण या युक्ति का मौलिक रूप से अभिकल्पन (डिजाइन) या सृजन करना, जिसका अस्तित्व पहले था ही नहीं।

गुम हो चुके नगर : प्राचीन नगर जिनका परित्याग कर दिया गया, जो डूब गए, नष्ट हो गए या निर्जनता में गुम हो गए।

वीएफआर (VFR) : मित्रों और सगे-सम्बन्धियों के पास जाना (Visiting Friends and Relatives)। यह पर्यटन का एक रूप है जिसमें पर्यटक विभिन्न उद्देश्यों के लिए मित्रों और सगे-सम्बन्धियों के पास जाते हैं।

प्रेक्षण करना : निगरानी करने, सुनने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने की प्रक्रिया।

वर्गीकरण करना : प्रेक्षण के दौरान प्राप्त होने वाले तत्वों के समूह बनाना।

मापन करना : परिकल्पना-निर्माण, आँकड़ा-संग्रहण, आँकड़ा-विश्लेषण और आँकड़ों की व्याख्या करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया।

अनुमान लगाना : आँकड़ों का विश्लेषण करके ज्ञान और सूचनाओं को निकालने की प्रक्रिया।

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) खोज का तात्पर्य किसी ऐसी नयी चीज का पता लगाने (अनावृत करने) से है जो संसार में पहले से ही विद्यमान थी लेकिन जिसका अब तक संज्ञान नहीं लिया गया था। अलग-अलग ज्ञानानुशासनों और क्षेत्रों में खोज शब्द का अर्थ अलग-अलग होता है। भाग 14.1 देखिए।

2) आविष्कार का सम्बन्ध किसी ऐसी प्रक्रिया या वस्तु या उपकरण के अभिकल्पन (डिजाइन)/सृजन से है जिसका अस्तित्व पहले था ही नहीं। आविष्कार का पेटेण्ट कराया जा सकता है लेकिन खोज का पेटेण्ट नहीं कराया जा सकता। भाग 14.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) विश्व की खोज ने नवीन गन्तव्य और मार्ग सृजित किए हैं। नए मार्गों और गुम हो चुके नगरों की खोज के साथ यात्रा और पर्यटन में अनेक तरीकों से वृद्धि हुई है। उपभाग 14.3.1 देखिए।

2) यात्रा और पर्यटन के अनेक रूप हैं; जैसे – विरासत पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन, ऐतिहासिक पर्यटन, पर्यावरणीय पर्यटन, नृ-जातीय पर्यटन, अनुभूतिपरक पर्यटन, शैक्षिक पर्यटन, निर्जन पर्यटन, भू-पर्यटन, अन्तरिक्ष पर्यटन आदि। इन रूपों को खोजों के प्रकारों के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है। भाग 14.3 देखिए।

3) उपभाग 14.3.8 और 14.3.9 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) आविष्कार पहली बार किया जाता है। यह अचानक और अनपेक्षित हो सकता है या इसे योजना बनाकर किया जा सकता है। यह जिज्ञासा का एक परिणाम होता है जिसका आधार आवश्यकता है। भाग 14.4 देखिए।

2) खोज की प्रक्रिया में प्रेक्षण, वर्गीकरण, मापन और अनुमान करना शामिल होता है। भाग 14.5 देखिए।

3) खोज अभिप्रेरण को प्रोत्साहित करती है और स्वायत्तता तथा स्वतन्त्रता को बढ़ाती है। इसने मानव सभ्यता को कुछ नया खोजने के लिए विवश किया है और आत्मविश्वास बढ़ाया है। भाग 14.6 देखिए।

इकाई 15 वाराणसी का नगरीकरण

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 नगरीकरण के अभिलक्षण

15.3 वाराणसी का नगरीकरण

15.3.1 वाराणसी में नगरीकरण को निर्धारित करने वाले कारक

15.3.1.1 प्राचीन काल में नगरीकरण

15.3.1.2 मध्यकाल में नगरीकरण

15.3.1.3 आधुनिक काल में नगरीकरण

15.4 वाराणसी में नगरीकरण के लिए उत्तरदायी संघटक

15.4.1 सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक आकर्षण

15.4.2 प्राचीन शिक्षा का केन्द्र

15.4.3 व्यापार और वाणिज्य

15.5 वाराणसी में नगरीकरण को प्रभावित करने वाले आधुनिक संघटक

15.5.1 पर्यटन केन्द्र

15.5.2 चिकित्सकीय केन्द्र

15.5.3 शैक्षिक केन्द्र

15.5.4 प्रवासन

15.5.5 औद्योगिक अवस्थापनाएँ

15.5.6 जनसंख्या वृद्धि

15.5.7 ग्रामीण नगरीय रूपान्तरण

15.6 सारांश

15.7 शब्दावली

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि आप :

- नगरीकरण के अर्थ और इसके अभिलक्षणों को समझ सकें;
- विभिन्न कालों के दौरान वाराणसी के नगरीकरण से परिचित हो सकें;
- वाराणसी के नगरीकरण के लिए उत्तरदायी संघटकों की पहचान कर सकें; और
- वाराणसी के नगरीकरण को प्रभावित करने वाले आधुनिक संघटकों पर चर्चा कर सकें।

15.1 प्रस्तावना

नगरीय शब्द की परिभाषा अलग-अलग देशों में अलग-अलग होती है। सामान्य तौर पर, नगरीय का तात्पर्य विपुल जनसंख्या से युक्त एक विशाल क्षेत्र से है। नगरीकरण मानव

बस्ती (स्थल) की ऐसी प्रक्रिया है जहाँ लोगों की विशाल आबादी (उच्च घनत्व) निवास करती है तथा यह स्थल रोजगार के अवसरों, वाणिज्य और व्यापार की उपस्थिति, जीविका के लिए आधारभूत संरचना (औद्योगीकरण) आदि के सम्बन्ध में उल्लेखनीय रूप से विकसित होता है। इसके साथ-साथ यहाँ आवासीय भवन, बैंक, अस्पताल, विद्युत और पेयजल के प्रावधान, पक्की गली, परिवहन और निकास-प्रणाली (आधुनिकीकरण) आदि जैसी बुनियादी सुख-सुविधाएँ भी मौजूद होती हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यह अल्पविकसित (ग्रामीण) से विकसित (नगरीय) क्षेत्र की ओर लोगों के प्रवास करने की एक प्रक्रिया है जिसके कारण ऐसे स्थल नगरों और कस्बों में रूपान्तरित हो जाते हैं। ऐसे प्रवासन के पीछे मुख्य लालसा बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, परिवहन, व्यावसायिक अवसरों, बेहतर आवासीय स्थलों, साफ-सफाई और स्वच्छता की होती है। धीरे-धीरे ऐसे स्थल सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से ग्रामीण इलाकों की तुलना में आगे निकल जाते हैं। नगरीकरण की ऐसी अवधारणाओं और परिभाषाओं से परे जाकर, अनुसन्धानकर्ताओं ने नगरीकरण की संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था और जनांकिकी को केन्द्र में रखते हुए कुछ अन्य परिभाषाएँ भी दी हैं। जहाँ तक नगर की सांस्कृतिक परिभाषा का सम्बन्ध है, यह मन की एक अलग अवस्था है जहाँ प्रथाओं और परम्पराओं का विकास प्रवासन के कारण होता है। राजनीतिक परिभाषा किसी राष्ट्र की राजधानी के इलाके में निवास करने वाली आबादी पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। आर्थिक परिभाषा लोगों द्वारा गैर-कृषि क्षेत्रक में व्यवसाय को अपनाए जाने पर यानी उनके द्वारा आय के अपने पारम्परिक स्रोत अर्थात कृषि को छोड़े जाने पर बल देती है। जनांकिकी का ध्यान उस परिवेश में निवास करने वाले लोगों की संख्या पर होता है, जिसे नगरीय क्षेत्र माना जाता है। लोगों की इस संख्या को घनत्व के रूप में मापा जाता है। यह एक तथ्य है कि इस पृथ्वी की आधी से अधिक जनसंख्या को नगरीय जनसंख्या के रूप में विचार करने का दावा किया जाता है।

15.2 नगरीकरण के अभिलक्षण

नगरीकरण के प्रमुख अभिलक्षण निम्नलिखित हैं :

1) **किसी नई जगह पर जनसंख्या के संकेन्द्रण में वृद्धि :** नगरीकरण किसी विशिष्ट क्षेत्र में लोगों को निवासियों के रूप में आकृष्ट करता है। इस क्षेत्र में कुछ बुनियादी सेवाओं की व्यवस्था होती है, जो अपने निवासियों की आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूर्ण करती है। धीरे-धीरे इसे एक नगरीय कस्बा या शहर घोषित करते हुए इसकी एक राजनीतिक परिधि निर्धारित कर दी जाती है। उन्नत अवस्था में जाकर इस जगह को, बहुत सारे अन्य मुद्दों के साथ-साथ, अत्यधिक जनसंख्या की चुनौती का सामना करना पड़ता है। प्रारम्भ में जो जगह आवासीय उपयोग के लिए उपयुक्त थी, वही अब जनसंख्या के संकेन्द्रण में वृद्धि के कारण अनेक प्रकार के दबावों से ग्रस्त हो जाती है और इसके अनेक विपरीत प्रभाव पड़ते हैं।

2) **इसमें कृषि क्षेत्र से गैर-कृषि क्षेत्र की तरफ लोगों का स्थानान्तरण शामिल रहता है :** वर्तमान परिदृश्य में, प्रत्येक व्यक्ति को आय के किसी न किसी स्थिर स्रोत की आवश्यकता होती है। कृषि क्षेत्र में उत्पादकता में गिरावट, भूमि के दिन-ब-दिन कम होते जाने, औद्योगीकरण और भूमण्डलीकरण के कारण नए अवसरों के मार्ग खुले हैं और परिणामस्वरूप लोगों की अधिकांश आबादी कृषि से गैर-कृषि क्षेत्र की तरफ चली आयी है।

3) **कृषि से इतर अनेक अन्य व्यावसायिक विकल्पों की उपलब्धता तथा इन उपलब्ध व्यवसायों में लोगों का प्रविष्ट होना :** औद्योगीकरण और भूमण्डलीकरण के कारण निजी क्षेत्र में अधिक अवसरों का सृजन हुआ है। कार्यजीवन (करियर) के पहलुओं में उन्नति, वाणिज्य और व्यापार के कारण आय के अधिकाधिक अवसरों की उपलब्धता के चलते बहुत सारे व्यावसायिक विकल्पों की स्थापना हुई है और इसका परिणाम यह हुआ है कि जनसमूह इन उपलब्ध व्यवसायों की तरफ प्रवृत्त हुआ है।

4) **जीवन जीने और कार्य करने का तरीका :** जीवन और कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं। हम इसलिए कार्य करते हैं क्योंकि हमें इसके एवज में भुगतान मिलता है। नगरीय शहरों में जीवन विलासितापूर्ण होता है तथा यह नौकरी के अवसरों पर निर्भर करते हुए कष्टदायी भी हो सकता है। हालाँकि लोग नगरीय संस्कृति के जीवन का आनन्द लेते हैं। मानवों और यन्त्रों के कौशलों की प्रस्तुति भी कार्य और जीवन के संयोग का एक कारक है। नगरों के जीवन और कार्य की तुलना यदि गाँवों के जीवन और कार्य से की जाए, तो इनमें काफी अन्तर है। शहरों में किसी व्यक्ति को प्रत्येक कार्य के लिए धनराशि मिलती है जबकि गाँवों में कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो भ्रातृत्व के नाम पर कर दिए जाते हैं और ऐसे कार्यों के लिए किसी प्रकार का कोई भुगतान नहीं किया जाता।

5) **निर्वैयक्तिक सामाजिक उत्तरदायित्व :** नगरीय संस्कृति को निर्वैयक्तिक सामाजिक उत्तरदायित्वों के मुद्दे का सामना करना पड़ता है क्योंकि सभी लोगों के प्रवासी होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति यहाँ दूसरे के लिए अजनबी होता है। कौशलों और नौकरियों आदि में गत्यात्मकता के कारण शहरों, कस्बों और महानगरों में जीवन अनियन्त्रित होता है। एक नौकरी से दूसरी नौकरी और एक जगह से दूसरी जगह स्थानान्तरण लोगों को निर्वैयक्तिक और अजनबी बना देता है।

6) **समय और रफ्तार की बाध्यता :** महानगरों में जीवन समय के इर्द-गिर्द विनियमित होता है; उदाहरण के लिए, समुदाय में सम्बद्धता, समय पर कार्यालय पहुँचने का दबाव, सड़कों पर बत्तियों यानी सिग्नलों आदि की बाध्यताएँ आदि। नगरीय शहरों में बँधे हुए जीवन का निर्धारण समय द्वारा होता है, जहाँ लोगों को अपना संवेग बनाए रखना होता है तथा लोग समय की पाबन्दी और घड़ी के मामले में बहुत विशिष्ट होते हैं।

7) **पारिवारिक जीवन और व्यक्ति :** तनावपूर्ण जीवन और अपने अस्तित्व के लिए किए जाने वाले खर्चों तथा निर्वैयक्तिक सम्बन्धों के कारण कस्बों और शहरों में निवास करने वाले लोग व्यक्तिवाद के लिए सोचने पर विवश होते हैं। वे "मैं" पर अधिक जोर देते हैं और सामाजिक जीवन की उपेक्षा करते हैं। इसी तरह गाँवों में लोग समाज के बारे में सबसे पहले सोचते हैं और वहाँ परिवार साथ-साथ रहते हैं जिन्हें संयुक्त परिवार कहा जाता है जिनमें स्वतन्त्रता बहुत अधिक होती है तथा परिवार के सर्वाधिक वरिष्ठ सदस्य को विशेषाधिकार प्रदान किया जाता है।

8) **मानव-निर्मित पर्यावरण :** नगरीय जीवन में प्राकृतिक संसाधनों का अभाव होता है। मानवों और यन्त्रों के इस मेल के कारण कृत्रिमता का एक आभामण्डल उत्पन्न होता है जहाँ सारा खेल यन्त्रों का ही होता है और परिवेश कृत्रिमता का आधार ग्रहण कर लेते हैं। यहाँ घास हरी तो होती है लेकिन वह प्राकृतिक नहीं होती, पेड़ पर फल लगे हुए तो दिखते हैं लेकिन न तो पेड़ ही असली होता है और न ही उसमें लटकने वाला फल ही वास्तविक होता है, यहाँ प्रकाश तो मौजूद होता है लेकिन यह सूर्य का प्रकाश नहीं होता। हमें ऐसे परिवेश में रहने के लिए विवश कर दिया जाता है जो मानव-निर्मित होता है।

9) **विश्वजनीन (कॉस्मोपॉलिटन) संस्कृति :** नगरीय राज्य की संस्कृति वैसी संस्कृति नहीं होती जिसे घरेलू कहा जा सके। जब प्रवासन घटित होता है तो अलग-अलग जातियों, पन्थों, रंगों, धर्मों, स्थानों, भौगोलिक पृष्ठभूमियों के लोग शहरों में साथ-साथ रहने के लिए आते हैं और इस प्रकार यहाँ एक नवीन संस्कृति पनपती है जिसे विश्वजनीन (कॉस्मोपॉलिटन संस्कृति) कहा जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) नगरीकरण शब्द से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) नगरीकरण के अभिलक्षणों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

15.3 वाराणसी का नगरीकरण

मार्क ट्वेन के शब्दों में "बनारस इतिहास से अधिक प्राचीन है, परम्परा से अधिक प्राचीन है, यहाँ तक कि किंवदन्ती से भी अधिक प्राचीन है, और ये सारी चीजें मिलाकर जितनी प्राचीन हैं, उसका दोगुना प्राचीन यह दिखता है।" वाराणसी, काशी और बनारस पर्यायवाची शब्द हैं और इसके गौरवशाली अतीत के इतिहास को निर्दिष्ट करते हैं। वाराणसी उन प्राचीनतम और जीवित नगरों में से एक है जिनका इतिहास बहुत स्पष्ट नहीं है। हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार, इस नगर की स्थापना भगवान शिव ने की थी जो उनके त्रिशूल पर अवस्थित है। एक सन्दर्भ के रूप में काशी का नाम प्राचीन भारतीय साहित्य; जैसे – पुराणों, उपनिषदों और वेदों में देखा जा सकता है। उपनिषदों में इसे सारे नगरों में सबसे अधिक पवित्र नगर कहा गया है। कुछ साहित्य ऐसे हैं जिनमें इसे "ऋषिपत्तन" कहकर सम्बोधित किया गया है जिसका तात्पर्य सन्तों का आश्रम होता है। ऐसा सम्बोधन इसलिए किया गया है क्योंकि इस नगर में प्रख्यात, घुमक्कड़ आध्यात्मिक विद्वान, साधु-सन्त और विद्यार्थी एकत्रित हुआ करते थे। इस पवित्र भूमि की यात्रा वे ज्ञान को साझा करने के लिए किया करते थे और वे हिन्दू धर्म के सूचनात्मक विमर्शों के साथ जुड़ने के लिए यहाँ आया करते थे। इस नगर का माहौल और स्थापत्य शैव सम्प्रदाय के भक्तों को सम्पूर्ण विश्व से आकृष्ट करता है। हालाँकि पुरातात्विक प्रमाण सिद्ध करते हैं कि इस नगर का इतिहास अतीत में लगभग 1200 ई. पू. तक जाता है किन्तु यह सम्भव है कि इस नगर का अस्तित्व इससे भी पहले रहा हो। यह नगर जब से मानव सभ्यता पनपी, तभी से इस सभ्यता का साक्षी रहा है और इस प्रकार यह नगर भारत की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में घोषित

है। 528 ई. पू. में गौतम बुद्ध ने इस स्थल के शैक्षिक महत्व को पहचाना और यहाँ अपना प्रथम उपदेश दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वाराणसी में स्थित एक स्थान सारनाथ विश्वप्रसिद्ध हो गया। वाराणसी काशी की राजधानी थी और काशी भारत के सभी सोलह महाजनपदों में सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद था। वाराणसी कुतुबुद्दीन ऐबक, फिरोजशाह तुगलक और सिकन्दर लोदी जैसे अनेक मुसलमान शासकों के आक्रमण का भी साक्षी बना, जिन्होंने यहाँ के मन्दिरों को नष्ट किया और सम्पूर्ण नगर को लूटा। यह अकबर ही था, जिसने इस नगर को पुनर्जीवित किया और मन्दिरों का पुनर्निर्माण कराया। अकबर के शासनकाल में ही हिन्दू धर्म दोबारा पनप सका। किन्तु अकबर की मृत्यु के पश्चात काशी के बुरे दिन फिर से शुरू हो गए। औरंगजेब ने मुख्य मन्दिर यानी काशी विश्वनाथ मन्दिर का ध्वंस कर दिया था और इसके उजड़े अवशेषों पर एक मस्जिद का निर्माण कराया। इस प्रकार उसने हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के बीच विवाद का एक विषय खड़ा कर दिया। औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त, वाराणसी पर मुगलों की सत्ता कमजोर पड़ गयी और परिणामस्वरूप "बनारस स्टेट" नामक शासकों का एक राजवंश अस्तित्व में आया जो अंग्रेजी शासन के दौरान स्वतन्त्रता मिलने तक कायम रहा। अंग्रेजी शासन के दौरान वाराणसी एक राजवंश नहीं रह गया और इसे एक देशी राज्य के रूप में बने रहने के लिए बाध्य किया गया। जहाँ तक इसके विकास का सम्बन्ध है, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात इस विषय में बहुत उम्मीदें की गयी थीं किन्तु सरकार की उपेक्षा के कारण सारी उम्मीदें व्यर्थ गयीं। इसका परिणाम यह हुआ कि इस नगर का विकास अन्य नगरों की तुलना में धीमी गति से हुआ। अच्छे अवसरों की तलाश में यहाँ के निवासियों ने वाराणसी को छोड़ना और राज्य के अन्य शहरों की तरफ जाना शुरू कर दिया। दूसरी तरफ पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार से लोगों की विशाल भीड़ का इस नगर में आगमन हुआ। वर्तमान परिदृश्य में, वाराणसी हिन्दू और मुसलमान समुदायों के बीच सांस्कृतिक और धार्मिक भ्रातृत्व को प्रोत्साहित करते हुए "गंगा-जमुनी तहजीब" का एक प्रेरणास्रोत बन चुका है। वर्तमान में, वाराणसी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन चुका है जहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए सम्पूर्ण भारत से और विदेशों से भी विद्यार्थी आते हैं। चार विश्वविद्यालय तथा अनेक सरकारी और निजी संस्थान विद्यार्थियों को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं और इस प्रकार वाराणसी को एक उल्लेखनीय शैक्षिक केन्द्र बनाते हैं।

15.3.1 वाराणसी में नगरीकरण को निर्धारित करने वाले कारक

इस विषय को समझने की सुविधा के लिए, इस विषय को नगरीकरण के तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है, जिनका वर्णन निम्नलिखित है :

15.3.1.1 प्राचीन काल में नगरीकरण

ये नदियों के प्रभाव और नदियों के किनारे ही थे, जिन्होंने आदिम लोगों को स्थायी रूप से बसने के लिए आकृष्ट किया। नदी के आसपास नगर स्थापित करने का मुख्य कारण यह था कि यहाँ जल का चिरस्थायी स्रोत, रक्षा और सुरक्षा, खाद्य और नियन्त्रक स्थिति प्रभावी रहती थी। समय के साथ जब ये उद्देश्य द्वितीयक हो गए तो धार्मिक जिज्ञासा (खोज) नगर की स्थापना के लिए प्राथमिक कारण बन गयी। प्रमाण हमें बताते हैं कि बाहरी लोग जब गंगा घाटी में सबसे पहले आए तो उन्होंने पाया कि यहाँ पर संस्कृति समृद्ध है; राजा, मन्त्रियों, सेना, सन्यासियों और अन्य द्वितीयक व्यवसायों से युक्त एक गैर-कृषि समाज है। इसके अतिरिक्त, अनुसन्धानकर्ताओं का मत है कि काशीदिया (काशी का प्राचीन नाम) को इस संसार का सृजन करने का भी श्रेय प्राप्त है जो बगीचों, बाजारों और सबसे बढ़कर शिक्षण के मुख्य केन्द्र से भरा-पूरा था। आर्यों के आगमन के साथ यह गंगा घाटी दो भागों में विभाजित कर दी गयी – नगरीय और ग्रामीण। नगरीय क्षेत्र राजा और उसके परिवार,

सेना, योद्धाओं, पुजारी ब्राह्मणों, व्यापारियों के रूप में वैश्यों और घरेलू सहायकों के रूप में शूद्रों से प्रभावित था। जबकि ग्रामीण क्षेत्र पर आदिम लोगों का प्रभुत्व था जिन्हें किसान कहा जाता था या जो अपनी आजीविका के प्राथमिक स्रोत के रूप में कृषि कार्य से सम्बद्ध थे। इसका परिणाम यह हुआ कि कस्बे प्रशासनिक और सैन्य मुख्यालयों, सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक केन्द्रों तथा व्यापार और वाणिज्य की गतिविधियों से युक्त संचार के साथ विकसित केन्द्र बन गए। मौर्य काल में सड़कों का निर्माण किया गया और इसके कारण नगरीय विकास में क्रान्ति आ गयी। ऐसी सड़कों ने सड़क-किनारे लगने वाले बाजारों के विकास को जन्म दिया। अपनी काशी यात्रा के दौरान चीनी यात्री फाहियान (405-511 ई.) ने भी भीड़भाड़ से युक्त सड़कों का उल्लेख किया है। इन सड़कों के जरिये व्यापार और वाणिज्य का संचालन किया जाता था, तथा अतिरिक्त सेवाओं के रूप में इन सड़कों के किनारे विश्रामालय, सरायें, धर्मशालाएँ, आराम-गृह और अस्पताल हुआ करते थे।

15.3.1.2 मध्यकाल में नगरीकरण

मध्यकाल के दौरान नगरीकरण की प्रवृत्ति जारी रही। वाराणसी अभी भी हिन्दू शिक्षण के एक केन्द्र के रूप में कायम था। मुसलमान शासकों ने सिथानिया की अवधारणा पेश की जो लगभग प्रत्येक गाँव में एक दुर्गीकृत कस्बे के रूप में होता था। बाजार वाले कस्बों के विकास के साथ नए कस्बे भी अस्तित्व में आए। नगरीकरण के क्षेत्र में यह एक क्रान्तिकारी प्रगति थी जिसने वाराणसी और आसपास के क्षेत्रों में कस्बाईपन के विकास को गति प्रदान की। मध्यकाल में मुसलमान शासकों के आगमन के साथ, वाराणसी समेत पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रबन्धन के अतिरिक्त समस्त प्रशासनिक अधिकार भी राजपूतों को सौंप दिए गए। पूर्वी उत्तर प्रदेश में नगरीकरण की वृद्धि को त्वरित करने में राजपूतों के ये वंश सहायक सिद्ध हुए। मुगल काल ने वाराणसी और उसके आसपास नदी-तन्त्र के माध्यम से व्यापार और वाणिज्य का मार्ग खोल दिया। सेना के लिए हथियार और गोला बारूद की आवश्यकता नगरीकरण की प्रक्रिया में मील का एक अन्य पत्थर थी। हालाँकि अन्य कारकों ने भी नगरीकरण की नींव डाली; जैसे – पोशाक और उससे जुड़ी सामग्रियों, जलपोतों और नौकाओं, इत्रों, कढ़ाई आदि की माँग। इन माँगों को पूरा करने के लिए वाराणसी नगर के आसपास कुछ गाँवों का उभार हुआ। ये गाँव बढ़ईगीरी और आभूषण-निर्माण के केन्द्र थे। आकर्षक और सृजनात्मक सूती और रेशमी वस्त्रों के कारण आज भी इन गाँवों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रसिद्धि का दर्जा दिया जाता है। अपने शासन के दौरान शेरशाह सूरी ने सैन्य उद्देश्यों के लिए ग्रैण्ड ट्रंक रोड का निर्माण करवाया था लेकिन यह मार्ग व्यापार और वाणिज्य के प्रसार में भी श्रेष्ठ साबित हुआ। सम्पूर्ण राज्य में व्यापार की सम्भावनाओं के द्वार खोलने के लिए उसने विश्रामालयों और सरायों को खुलवाने का भी प्रस्ताव रखा था। नगरीकरण के क्षेत्र में एक और विकास तब घटित हुआ जब मंसा राम द्वारा वाराणसी के भूभाग में बनारस हाउस की स्थापना की गयी। उनके पुत्र राजा बलवन्त सिंह ने विन्ध्य पहाड़ियों के गिरिपद के पास स्थित चकिया नामक स्थान पर बाजार के साथ-साथ रामनगर के दुर्गीकृत नगर की स्थापना की। इसका उद्देश्य यह था कि जब राजा और उनके परिवार के लोग शिकार और निशानेबाजी (मनोरंजन) के लिए बाहर जाएँ तो उनको सुविधा हो। राजा बलवन्त सिंह की पत्नी को फूलपुर में बाजार स्थापित करने का श्रेय प्राप्त है। राजा के अधिकारियों ने विश्रामालय के साथ-साथ नौबतपुर और मुगलसराय नामक दो बाजारों की स्थापना की। उनके पुत्र सूरज सिंह ने भदोही में बाजार स्थापित किए। वाराणसी और आसपास के इलाकों में बाजारों की स्थापना नियमित तरीके से जारी रही और इसके लिए केवल राजपूत ही उत्तरदायी नहीं थे, बल्कि भूमिहार शासकों को भी इसका श्रेय जाता है जिन्होंने डॉडूपुर, बसानी, बरागाँव जैसे बाजारों को स्थापित किया। विद्यमान बाजारों पर भीड़भाड़ के बढ़ते दबाव के कारण गंगा के दक्षिण जैसे रणनीतिक महत्व के स्थलों पर कुछ

नए बाजार भी उभरे। अहरौरा, लालगंज और हलिया ऐसे बाजारों के उदाहरण हैं। इन सभी बाजारों में भोजनालय हुआ करते थे और ये बाजार स्थानीय और क्षेत्रीय विशेषीकृत वस्त्र–विनिर्माणकर्ताओं को आकृष्ट किया करते थे। मलमल का उत्पादन वाराणसी के निकट स्थित एक जगह जौनपुर में किया जाता था। खस या खाझा या खाजा, गर्हश और इमिरती जैसी खाने-पीने वाली प्रसिद्ध चीजें वाराणसी से संलग्न इलाकों में तैयार की जाती थीं लेकिन इनकी आपूर्ति और बिक्री वाराणसी के बाजारों में हुआ करती थी। इन सभी बाजारों का विनियमन मध्यस्थों द्वारा किया जाता था जो विनिर्माणकर्ताओं, खरीदारों और व्यापारियों के बीच बैठकों की व्यवस्था किया करते थे और इन मध्यस्थों को इन बैठकों की व्यवस्था कराने के लिए भुगतान किया जाता था।

15.3.1.3 आधुनिक काल में नगरीकरण

ये बाजार के मध्यस्थ ही थे जिन्होंने यूरोपीय लोगों को घरेलू बाजारों से परिचित कराया। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इन सभी बाजारों को निगल लिया तथा कृषि और उद्योग के अतिरिक्त आत्मनिर्भर व स्वपर्याप्त गाँवों की व्यापारिक और वाणिज्यिक व्यवस्था को भी नष्ट कर दिया। बाजार के विनियमन के सम्बन्ध में बनायी गयी नीतियाँ भारतीय बाजारों के लिए हानिकारक सिद्ध हुईं और नगरीकरण की प्रक्रिया के लिए ये नीतियाँ एक बड़ी बाधा बनीं। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था ने भारतीय अर्थव्यवस्था का अधिग्रहण कर लिया जिसके कारण अनेक बाजारों के व्यापारिक और वाणिज्यिक आधार को चोट पहुँची। अंग्रेजों द्वारा इमारतों और शहरी बस्तियों के रूप में नगरीकरण के एक नए रूप को प्रस्तुत किया गया और हाँ, इसे एक सुनियोजित नगरीय व्यवस्था कहा जा सकता है। छावनी क्षेत्र, रेलवे कॉलोनियों और अंग्रेजी सरकार के सिविल सेवकों के घरों के प्रतिमान के निर्माण के कारण वाराणसी में नगरीकरण का एक चमकदार रूप सामने आया। पूर्वी उत्तर प्रदेश में अंग्रेजी सर्वोच्चता ने नगरीय प्रकार्यों की प्रगति और वृद्धि के लिए एक वातावरण को आकार दिया और इसका परिणाम यह हुआ कि वाराणसी, नगरीकरण के नए पहलुओं को गौरवान्वित करते हुए, पूर्वी भारत का एक विशाल नगर बन गया। स्वतन्त्रता के समय वाराणसी उत्तरी प्रान्तीय राज्य का हिस्सा बना और तब से यहाँ नगरीकरण अनेक तरीकों से प्रारम्भ हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) वाराणसी के इतिहास पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) वाराणसी में नगरीकरण के कारकों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

15.4 वाराणसी में नगरीकरण के लिए उत्तरदायी संघटक

अपने इतिहास के दौरान वाराणसी ने एक आध्यात्मिक सामाजिक-धार्मिक केन्द्र के रूप में लोकप्रियता हासिल की। यह सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों के साथ-साथ पर्यटन सेवाओं के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करता है। वाराणसी में नगरीकरण मानव-निर्मित और प्राकृतिक, दोनों प्रकार के, अभिलक्षणों के मिश्रण द्वारा घटित हुआ। प्राकृतिक अभिलक्षणों में शामिल हैं - गंगा नदी और इसके साथ-साथ कुछ अन्य जंगली या निर्जन संसाधन जो वाराणसी में और इसके आसपास के इलाकों में मौजूद हैं। वाराणसी के नगरीकरण में अपना योगदान देने वाले मानव-निर्मित अभिलक्षण हैं – इसकी समृद्ध संस्कृति और विरासत, जिसकी जड़ें इस क्षेत्र में आदिम मनुष्यों के अस्तित्व के समय से ही विद्यमान हैं। पहले इस शहर का नगरीकरण यहाँ के निवासियों को ध्यान में रखते हुए किया गया था लेकिन अब दृश्य बदल चुका है। वाराणसी अब व्यापार और वाणिज्य के कुछ रूपों के साथ-साथ पर्यटन केन्द्रित गतिविधियों के एक महत्वपूर्ण केन्द्र में रूपान्तरित हो चुका है।

15.4.1 सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक आकर्षण

हिन्दू धर्म के रीति-रिवाज और तीर्थयात्रा एक सामाजिक-धार्मिक केन्द्र के रूप में वाराणसी के पनपने के प्राथमिक कारण हैं। इसके चलते लाखों घरेलू और विदेशी पर्यटक इस जगह की तरफ आकर्षित होते हैं। यह स्थान हिन्दू तीर्थयात्रा से सम्बन्धित स्थलों के लिए विख्यात है जो वाराणसी की परिधि पर जगह-जगह बिखरे हुए हैं। यह भारत के छह प्राचीन पवित्र नगरों में से एक है। इसे शाश्वत नगर के रूप में भी जाना जाता है और ऐसा विश्वास है कि जिस व्यक्ति की मृत्यु काशी में होती है या जिस व्यक्ति का अन्तिम संस्कार काशी में होता है उसे मोक्ष प्राप्त होता है और ऐसी आत्मा जन्म और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाती है। यह मान्यता है कि भगवान शिव पार्वती के साथ यहाँ निवास करते हैं और इस नगर को बुराइयों से बचाते हैं। गंगा भी वाराणसी के लोगों के लिए जीवनदायी के रूप में कार्य करती हैं। अनेक धार्मिक अवसरों पर लोग गंगा नदी में डुबकी लगाते हैं। ऐसा विश्वास है कि गंगा में स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं। सुबह-ए-बनारस और गंगा आरती के दर्शन के लिए गंगा घाट सर्वाधिक लोकप्रिय आकर्षण हैं। गंगा आरती प्रत्येक दिन सायंकाल में होती है और यह परम्परा 250 वर्षों से अधिक समय से चली आ रही है। ये घाट विशेष अवसरों पर आयोजित किए जाने वाले अनेक सांस्कृतिक और धार्मिक समारोहों के केन्द्र हैं। वाराणसी में पारम्परिक यात्राओं (तीर्थयात्राओं के मार्ग) का भी आयोजन होता है और ऐसी ही एक प्रसिद्ध यात्रा "पंचकोसी यात्रा" है जिसके अन्तर्गत पाँच मील त्रिज्या वाला एक पचास मील लम्बा मार्ग शामिल है। इस यात्रा के मार्ग में 108 मन्दिर स्थित हैं और सर्वाधिक उल्लेखनीय मन्दिर पंचकोसी मन्दिर है। नगर प्रदक्षिणा एक अन्य लोकप्रिय यात्रा है जिसके मार्ग में 72 मन्दिर स्थित हैं। यद्यपि वाराणसी एक हिन्दू तीर्थ के रूप में विख्यात है, मुख्य संघटक मन्दिर ही हैं। एक आकलन के अनुसार, वाराणसी में लगभग तेईस हजार मन्दिर स्थित हैं लेकिन सारे मन्दिर प्रसिद्ध नहीं हैं। वाराणसी के प्रमुख प्रसिद्ध मन्दिरों में शामिल हैं - काशी विश्वनाथ मन्दिर, जो द्वादश ज्योतिर्लिंग के एक केन्द्र के रूप में उपस्थित है; दुर्गा मन्दिर; संकट मोचन मन्दिर; तुलसी मानस मन्दिर; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के परिसर में स्थित नया काशी विश्वनाथ मन्दिर; काल भैरव मन्दिर; केदारेश्वर मन्दिर; तिल भण्डेश्वर मन्दिर; विनायक के 56 रूप (गणेश भगवान) और अनेक ऐसे मन्दिर जिनका महत्व रीति-रिवाजों को सम्पन्न करते समय अधिक स्पष्ट होता है।

सारनाथ बौद्ध यात्रियों का एक अन्य तीर्थस्थल है जहाँ बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था। बौद्ध यात्री यहाँ महात्मा बुद्ध की उपासना करने आते हैं। यह वही स्थल है जहाँ महात्मा बुद्ध ने ज्ञानप्राप्ति के पश्चात पाँच शिष्यों को अपना प्रथम उपदेश दिया था। "बुद्धम्

शरणम् गच्छामि" नामक मन्त्र की उत्पत्ति सारनाथ में ही हुई थी और इसी कारण सारनाथ में लाखों यात्री प्रतिदिन आते हैं। यहाँ के प्रमुख आकर्षण हैं – चौखण्डी स्तूप, अशोक स्तम्भ, सिंह दर्शाने वाला संग्रहालय (भारत का राष्ट्रीय चिह्न), बुद्ध की मूर्तियाँ, तिब्बती मन्दिर, महात्मा बुद्ध की एक विशाल खड़ी हुई मूर्ति के साथ थाई मन्दिर, उत्खनन-स्थल के साथ-साथ मुख्य केन्द्र के रूप में विख्यात मूलगन्ध कुटी विहार मन्दिर और धमेख स्तूप तथा अन्य अनेक मन्दिर जिनके निर्माण में जापान, श्रीलंका और चीन जैसे देशों ने योगदान दिया है।

हिन्दू और बौद्ध मन्दिरों के अतिरिक्त वाराणसी जैनियों का भी तीर्थस्थल है। यह कहा जाता है कि जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म यहीं हुआ था। लेकिन जैन साहित्य का दावा है कि जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में से चार का जन्म वाराणसी में ही हुआ था। इनके नाम हैं – श्री सुपार्श्वनाथ, श्री चन्द्र प्रभु, श्री श्रेयांस नाथ और श्री पार्श्वनाथ। प्रसिद्ध जैन मन्दिर सारनाथ और भेलूपुर में अवस्थित हैं।

15.4.2 प्राचीन शिक्षा का केन्द्र

प्राचीनतम होने के कारण, शताब्दियों पहले से वाराणसी का विकास शिक्षण, ज्ञान, संस्कृति, कला और हस्तशिल्प के एक केन्द्र के रूप में होता रहा। यहाँ के विद्वान गुरुओं और पण्डितों के उपदेशों, उनकी मण्डलियों, विमर्शों और भाषणों से अध्येतागण लाभान्वित होते रहे हैं। इस नगर ने अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, संस्कृत, योग, ध्यान, हिन्दी भाषा, वैष्णव सम्प्रदाय और शैव सम्प्रदाय को प्रोत्साहित किया है। रामचरितमानस का संकलन तुलसीदास ने वाराणसी में यहीं किया था। यहाँ की मिट्टी ने प्रेमचन्द जैसे कालजयी उपन्यासकार को पैदा किया है। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने इस स्थल का चुनाव अपनी "थियोसोफिकल सोसायटी" के लिए एक धाम के रूप में किया था। काशी के महाराजा के सहयोग से पण्डित मदन मोहन मालवीय ने प्राचीन काशी की ज्ञान-प्रकृति की परम्परा को जारी रखा और उन्होंने आधुनिक शिक्षा प्रणाली से युक्त बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। इस विश्वविद्यालय के बारे में दावा किया जाता है कि यह एशिया का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है। यह भी कहा जाता है कि प्लास्टिक सर्जरी, मोतियाबिन्द, कैलकुलस, संक्रियाओं जैसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञानों की जननी आयुर्वेद का घर वाराणसी ही है और इसका प्रसार पूरे संसार में आयुर्वेद और योग के आचार्य सन्त पतंजलि के कारण सम्भव हुआ था। सन्त पतंजलि वाराणसी से सम्बन्धित थे। वाराणसी ने साहित्य और साहित्यकारों के रूप में ही अपना योगदान नहीं दिया, बल्कि यहाँ नृत्य और संगीत के अनेक महान विद्वान भी पैदा हुए। प्रसिद्ध सितारवादक पण्डित रविशंकर वाराणसी से ही आते हैं, विश्वप्रसिद्ध शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ गंगा के घाटों को जाने वाले रास्ते पर पड़ने वाली एक सँकरी गली में स्थित एक घर में निवास किया करते थे। जीवित किंवदन्ती बन चुके पण्डित बिरजू महाराज और स्वर्गीय पण्डित किशन महाराज का जन्म भी वाराणसी की पवित्र भूमि पर हुआ था। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध गायक पण्डित छन्नूलाल मिश्र भी वाराणसी से सम्बन्धित हैं। चैतन्य और वल्लभाचार्य जैसे महान सन्तों के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि उन्होंने वाराणसी में संगीत का विकास किया और उसे लोकप्रिय बनाया। सूरदास, रैदास, कबीरदास, तुलसीदास और मीरा जैसे सन्तों ने भक्ति संगीत और भजन के रूप में जो योगदान दिया है, उसने भी वाराणसी को संगीत के एक लोकप्रिय केन्द्र के रूप में प्रचारित किया। गायन की ध्रुपद शैली के लिए भी बनारस एक लोकप्रिय केन्द्र बना। वाराणसी के महाराजा को संगीत और संगीतकारों को संरक्षण प्रदान करने का भी श्रेय जाता है। इस प्रकार, वाराणसी संगीत का एक लोकप्रिय केन्द्र बन गया जिसने ठुमरी, तराना, दादरा, चैती, कजरी, होरी, भैरवी, घाटो आदि जैसे लोकप्रिय रागों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

15.4.3 व्यापार और वाणिज्य

वाराणसी रेशम मार्ग का एक हिस्सा था, इसलिए अपने प्रारम्भिक दिनों में इसने खासतौर पर रेशम की अपनी उत्कृष्ट गुणवत्ता तथा सोने और चाँदी से जरी किए हुए वस्त्रों के लिए व्यापारियों को आकृष्ट किया। जहाँ तक व्यापार और वाणिज्य का सम्बन्ध है, यह हथकरघा उद्योग ही है जो, धार्मिक पर्यटन से परे जाकर, वाराणसी को नाम और यश प्रदान कर रहा है। बनारसी साड़ियाँ प्रत्येक विवाहिता भारतीय स्त्री के लिए एक स्वप्न होती हैं और ये साड़ियाँ वाराणसी में व्यापार और वाणिज्य की मुख्य संघटक हैं। ऐसी विशिष्ट साड़ियों को बनाने वाले लोग एक विशेष वर्ग से आते हैं, जिन्हें "जुलाहा" कहा जाता है। ये साड़ियाँ पहले हथकरघे की मदद से बुनी जाती थीं लेकिन अब हथकरघे के स्थान पर विद्युत-करघा आ गया है। अपनी घरेलू वस्तुओं के लिए व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहित करने हेतु वाराणसी में पर्यटन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आधुनिक समय में वाराणसी अनेक वस्तुओं के लिए एक केन्द्र के रूप में उभरा है; जैसे – मिर्जापुर और भदोही के कालीन, चुनार में मिट्टी के चमकीले बर्तन बनाने का काम, विभिन्न रंगों और डिजाइनों के लकड़ी के खिलौने, रुद्राक्ष जैसी धार्मिक वस्तुएँ, पीतल और पत्थरों के बने हुए धातुशिल्प और चित्र आदि।

15.5 वाराणसी में नगरीकरण को प्रभावित करने वाले आधुनिक संघटक

ऐसे अनेक संघटक हैं जो वाराणसी में नगरीकरण को प्रोत्साहित करने के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। ऐसे संघटकों पर नीचे चर्चा की गयी है :

15.5.1 पर्यटन केन्द्र

एक पर्यटन केन्द्र के रूप में वाराणसी को अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गयी हैं; जैसे– हवाई अड्डा, बस टर्मिनल, रेलवे स्टेशन, होटल और रेस्तराँ, सम्भ्रान्त और विशिष्ट इलाकों में स्वच्छता, विद्युत आपूर्ति, जल, आवास, राज्य राजमार्गों और राष्ट्रीय राजमार्गों के रूप में चौड़ी सड़कें, जल परिवहन, कूड़े का निस्तारण और अनेक अन्य सुविधाएँ। हाल ही में वाराणसी को स्मार्ट सिटी नियोजन परियोजना का दर्जा प्रदान किया गया है और यह केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रारम्भ की गयी हृदय (HRIDAY) नियोजन परियोजना का भी एक हिस्सा है। वायुयान इस जगह को व्यावसायिक महत्व के घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय गन्तव्यों से जोड़ते हैं। रेलगाड़ियाँ इस नगर को भारत के प्रमुख नगरों से जोड़ती हैं। निकट स्थित सभी स्थानों के लिए नियमित अन्तरालों पर बसों की सुविधा उपलब्ध है। आय के स्रोत की खोज में लोग ऐसे नगरों पर निर्भर रहते हैं जहाँ अंशकालिक या पूर्णकालिक, कुशल, अर्द्धकुशल या अकुशल नौकरियाँ उपलब्ध हों। कमोबेश लोग ऐसी नौकरियों को पसन्द करते हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यटन से जुड़ी हों। इसके परिणामस्वरूप, वाराणसी जरूरत से अधिक जनसंख्या वाला नगर बन गया है तथा कस्बे का विस्तारित क्षेत्र पहले से ही बहुत अधिक चौड़ा है।

15.5.2 चिकित्सकीय केन्द्र

अपने आसपास के स्थानों की तुलना में, एक प्रमुख नगर के रूप में वाराणसी अच्छी चिकित्सकीय सेवाओं का भी आनन्द उठाता है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS) और इसी तरीके के अन्य अस्पताल नगरीकरण में योगदान दे रहे हैं और किसी तरह का रोजगार खोज रहे लोगों को आकृष्ट कर रहे हैं।

15.5.3 शैक्षिक केन्द्र

वाराणसी को, इसके उभार के समय से ही, विभिन्न ज्ञानानुशासनों के लिए एक शैक्षिक केन्द्र के रूप में प्रोत्साहित किया गया है। यह प्रवृत्ति अभी भी जारी है और अनेक संस्थानों का उद्‌भव हुआ है। अपने बच्चे/बच्चों को बेहतर शिक्षा व्यवस्था उपलब्ध कराने की आशा से भरे माता-पिता और परिवार नगर से संलग्न क्षेत्रों में ठहरना पसन्द करते हैं जिसके कारण संसाधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। उनके बीच की प्रतियोगिता भी नगरीकरण की दिशा में ले जाती है।

15.5.4 प्रवासन

लोगों के प्रवासन के कारण भी वाराणसी पर अत्यधिक दबाव पड़ रहा है। प्रत्येक व्यक्ति किसी नौकरी के अवसर का स्वप्न देखता है और नगर में निवास करने की योजना बनाता है ताकि उसका जीवन सुविधापूर्वक चल सके। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि अधिक जनसंख्या के कारण आजीविका के बहुत सारे विकल्प उत्पन्न हुए हैं।

15.5.5 औद्योगिक अवस्थापनाएँ

वाराणसी में चल रहे उद्योगों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है – सूक्ष्म, लघु और मध्यम। जरी, साड़ियों और रेशम के अन्य उत्पादों, कालीनों (चटाइयों), पत्थर पर शिल्पकारी आदि के विनिर्माण के लिए हथकरघा और विद्युत-करघा की स्थापना की गयी है। वाराणसी के विभिन्न कोनों में अवस्थित औद्योगिक अवस्थापनाएँ आसपास के स्थानों के लोगों को रोजगार के लिए भी आकर्षित करती हैं। डीजल रेल कारखाना और भारत हैवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड (भेल) सरकार की दो इकाइयाँ हैं जो सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं और नगरीकरण के नवीन मार्ग खोल रही हैं।

15.5.6 जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या नीति-निर्माताओं को नगरीकरण के लिए सोचने पर विवश करती है। प्रवासन के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई है और इसका एक परिणाम यह हुआ है कि नगर की परिधि का विस्तार होता चला गया है।

15.5.7 ग्रामीण नगरीय रूपान्तरण

ग्रामीण का नगरीय में रूपान्तरण भी नगरीकरण को प्रभावित करता है। अपने विस्तार के कारण ग्रामीण इलाकों को नगरीय सभ्यता की सुविधा प्रदान की गयी है और इसका एक परिणाम यह हुआ है कि वाराणसी के आसपास के क्षेत्र अब सुगम्य हो गए हैं जहाँ बहुत आसानी से पहुँचा जा सकता है। केन्द्रीय स्थल पर विकास के लिए अब कोई स्थान शेष नहीं रहा और इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण नगरीय रूपान्तरण की आवश्यकता उत्पन्न हुई है।

बोध प्रश्न 3

1) वाराणसी के सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व को विस्तार से बताइए।

.....

.....

.....

.....

2) यात्रा और पर्यटन के दृष्टिकोण से वाराणसी का महत्व क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

15.6 सारांश

नगरीकरण अल्पविकसित (ग्रामीण) से विकसित (नगरीय) क्षेत्र की ओर लोगों के प्रवास करने की एक प्रक्रिया है जिसके कारण ऐसे स्थल नगरों और कस्बों में रूपान्तरित हो जाते हैं। ऐसे प्रवासन के पीछे मुख्य लालसा बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, परिवहन, व्यावसायिक अवसरों, बेहतर आवासीय स्थलों, साफ-सफाई और स्वच्छता की होती है। धीरे-धीरे ऐसे स्थल सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से ग्रामीण इलाकों की तुलना में आगे निकल जाते हैं तथा यात्रा और पर्यटन गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र बन जाते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पर्यटन ने नगरीकरण में योगदान दिया है और पर्यटन के कारण दूरदराज के इलाकों में विकास हुआ है। ग्रामीण इलाकों और नगरीय क्षेत्रों के बीच की दूरी कम हो रही है। नगरीय नियोजन के लिए रणनीतियाँ बनाते समय नीति-निर्माताओं और योजनाकारों के लिए यह अनिवार्य हो गया है कि वे पर्यटकों के साथ-साथ यहाँ के निवासियों की आवश्यकताओं को भी समझें। पर्यटकों को छोटी-सी समयावधि के लिए नगरीय आतिथ्य की सुविधाओं का आनन्द लेने का अवसर प्रदान किया जाता है इसलिए इस बात पर सर्वाधिक बल दिया जाना चाहिए कि पर्यटकों के साथ-साथ यहाँ के निवासीजन भी इन सेवाओं और सुविधाओं का समान रूप से लाभ ले सकें। नगरीकरण के लिए उत्तरदायी कारक पर्यटन है क्योंकि यह व्यक्तियों के संचलन (गति) पर आधारित सबसे तेजी से वृद्धि करने वाला उद्योग है। हालाँकि यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि सुविधाएँ पर्यटकों को ध्यान में रखकर उपलब्ध करायी जाती हैं लेकिन साथ ही साथ इन सुविधाओं के द्वार निवासियों के उपयोग के लिए भी खुले रहते हैं।

15.7 शब्दावली

नगरीय : विपुल जनसंख्या से युक्त विशाल क्षेत्र।

नगरीकरण : नगरीकरण मानव बस्ती (स्थल) की ऐसी प्रक्रिया है जहाँ लोगों की विशाल आबादी (उच्च घनत्व) निवास करती है तथा यह स्थल उल्लेखनीय रूप से विकसित होता है।

विश्वजनीन (कॉस्मोपॉलिटन) संस्कृति : जब प्रवासन घटित होता है तो अलग-अलग जातियों, पन्थों, रंगों, धर्मों, स्थानों, भौगोलिक पृष्ठभूमियों के लोग शहरों में साथ-साथ रहने के लिए आते हैं और इस प्रकार यहाँ एक नवीन संस्कृति पनपती है जिसे विश्वजनीन (कॉस्मोपॉलिटन संस्कृति) कहा जाता है।

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 15.1 देखिए।

2) भाग 15.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 15.3 देखिए।

2) उपभाग 15.3.1 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 15.4.1 देखिए।

2) भाग 15.5 देखिए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 16 रोमन साम्राज्य और नगरीकरण

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 इटली का संक्षिप्त इतिहास

16.3 रोम का उभार

- 16.3.1 राजनीतिक उथल-पुथल
- 16.3.2 उपनिवेशीकरण
- 16.3.3 रोम का यूनानीकरण (Hellenization)

16.4 रोमन गणराज्य में शासन विधि/प्रशासन (गवर्नेंस)

- 16.4.1 रोमन समाज
- 16.4.2 परिवार
- 16.4.3 महिलाओं की दशा
- 16.4.4 रोमनों में दासता

16.5 नगरीय अवस्थापना

16.6 रोमन साम्राज्य में मनोरंजन के साधन

16.7 रोमन साम्राज्य में ईसाइयत

16.8 कांस्टैण्टाइन और परवर्ती साम्राज्य

16.9 रोमन साम्राज्य का पतन

16.10 शब्दावली

16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि आप :

- इटली के संक्षिप्त इतिहास और रोम के उभार के बारे में जान सकें;
- रोमन गणराज्य में शासन-विधि/प्रशासन (गवर्नेंस) को समझ सकें;
- नगरीय अवस्थापना और मनोरंजन के साधनों को समझ सकें; और
- रोमन साम्राज्य के पतन के कारणों की पहचान कर सकें।

16.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम पहले ही नगरीकरण के अर्थ, इसके अभिलक्षणों और संघटकों पर चर्चा कर चुके हैं। यह चर्चा वाराणसी (भारत) के सन्दर्भ में की गयी है। अब वर्तमान इकाई में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि रोमन साम्राज्य का उभार और विकास किस प्रकार हुआ। हम राजनीतिक व्यवस्था, समाज, शासन करने की विधियों, परिवार, दासता और नगरीय अवस्थापना पर चर्चा करेंगे। इसके अतिरिक्त मनोरंजन के साधनों, ईसाइयत के उदय, परवर्ती साम्राज्यों और रोमन साम्राज्य के पतन पर भी चर्चा की जाएगी।

16.2 इटली का संक्षिप्त इतिहास

इटली का इतिहास पाषाण काल से प्रारम्भ होता है और पाँचवीं शताब्दी ई. पू. में साहित्य उपलब्ध होता है जो इटली के इतिहास को स्पष्ट करता है। रोमन-पूर्व इटली में बहुत सारे आदिवासी (जनजातीय) समुदाय मौजूद थे जिनकी भाषा और संस्कृति अलग-अलग थी। 400 ई. पू. के दौरान इटली अनेक राजतन्त्रों में विभाजित था; जैसे – पो घाटी (उत्तर-दक्षिण भाग) को नियन्त्रित करने वाले सेल्टिक गॉल्स (Celtic Gauls), सेल्टिक गॉल्स के अधिकार में आने वाले भूक्षेत्र के दक्षिण में राज करने वाले एट्रुस्कैन लोग। प्रारम्भ में रोमन लोगों ने केन्द्रीय इटली पर अधिकार कर लिया था लेकिन बाद में लैटिन, ऑस्कन और सैमनाइट लोगों ने कम्पेनिया के छोटे-से हिस्से के साथ-साथ इस पर पूर्ण रूप से कब्जा कर लिया जबकि यूनानी लोग दक्षिण में मौजूद थे। यूनानी कॉलोनियाँ तटीय क्षेत्रों में केन्द्रित थीं तथा नेपल्स और टारेण्टम उनके नगर थे। यूनानी और एट्रुस्कैन लोग ही ऐसे आदिवासी थे जिनके पास नगरीकृत संस्कृति थी। एट्रुस्कैन लोगों का स्रोत ज्ञात नहीं है लेकिन यह कहा जाता है कि वे पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र से प्रवासियों के रूप में आए थे और वे इटली की संस्कृति से प्रभावित थे तथा 800-700 ई. पू. तक वे यूनानियों के सम्पर्क में आने के कारण सभ्य हुए थे। एट्रुस्कैन लोग बारह नगरों के एक संघ के अन्तर्गत रहते थे। ये नगर अपनी भाषा और धर्म के द्वारा एकताबद्ध थे। बाद में इन नगरों को अल्पतन्त्र (ओलीगार्की) घोषित कर दिया गया और इनका शासन प्रमुख परिवारों की परिषदों द्वारा संचालित किया जाता था। तीसरी शताब्दी ई. पू. तक हुए विकास के कारण एट्रुस्कैन लोग रोमन संस्कृति को विशेषतौर पर धर्म, स्थापत्य और कला के क्षेत्र में गहराई से प्रभावित करते हुए रोमन साम्राज्य में शामिल हो गए।

इटली के प्रायद्वीप में जल के चिरस्थायी स्रोत उपलब्ध हैं और यहाँ प्राकृतिक संसाधन भी प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। यहाँ दो पर्वत श्रृंखलाएँ स्थित हैं जो नदियों, झरनों और धाराओं की प्रमुख स्रोत हैं। इन स्रोतों से यहाँ के निवासियों को पेयजल प्राप्त होता है। ये दोनों पर्वत श्रृंखलाएँ हैं – आल्पस, जो उत्तर में स्थित है और दूसरी एपेनाइन श्रृंखला, जो इटली के केन्द्र में स्थित है। पो और अरनो इटली की दो प्रमुख नदियाँ हैं जो उत्तर में बहती हैं और टाइबर नदी केन्द्रीय इटली में बहती है। पर्वतीय भूक्षेत्र के कारण यह देश लकड़ी और खनिजों से समृद्ध है और इसके साथ-साथ यहाँ घास के मैदान भी हैं। घास के ये मैदान भेड़ों और बकरियों जैसे पालतू जानवरों के लिए बहुत उपयोगी हैं। रोमन प्रायद्वीप उपजाऊ है और इटली में यह तीन भागों में विभाजित है। पहला भाग पो नदी घाटी है जो उत्तर में स्थित है, दूसरा भाग लैटियम का मैदान है जो रोम के इर्द-गिर्द फैला हुआ है और तीसरा भाग कम्पेनिया है जो नेपल्स के आसपास विस्तृत है। ज्वालामुखीय मिट्टियों, गर्म झरनों, सुहावने मौसम और जलवायु के कारण कम्पेनिया को एक लोकप्रिय पर्यटन गन्तव्य के रूप में परिवर्तित कर दिया गया जो रोमन सम्भ्रान्तवर्गीय यात्रियों को आकर्षित किया करता था। लैटियम का मैदान अपनी प्रकृति में उपजाऊ है और यह टाइबर नदी का उद्‌गम स्थल है। इस मैदान में कम ऊँचाई वाली अनेक पहाड़ियाँ हैं जिन्हें अल्बन (Alban) पहाड़ियाँ कहा जाता है। रोमन लोगों ने जब इटली में प्रवेश किया तो पाया कि यहाँ के मूलवासी लोग कृषि के कार्य में लगे हुए हैं। जब यूनानी लोग रोमन क्षेत्र की तरफ आगे बढ़े तो उन्होंने पाया कि आदिवासी समूह नगरीकृत नहीं हैं।

16.3 रोम का उभार

रोम और रोमवासियों के उभार का वर्णन उनकी लोककथाओं में किया गया है। उन्होंने एक कहानी गढ़ी कि रोमुलस और रीमस जब छोटे ही थे, तब वे किस प्रकार मौत के मुँह से

बच निकले और रोम की स्थापना की। हालाँकि रोम के नगर की स्थापना का श्रेय रोमुलस और रीमस को जाता है। पुरातात्विक प्रमाणों के माध्यम से यह मान लिया गया है कि रोम में बसावट के प्रतिमान 1500 ई. पू. तक प्रारम्भ हो चुके थे लेकिन ठोस संसाधनों के अभाव के कारण अनुसन्धानकर्ता अभी भी कुछ विरोधाभास की स्थिति में हैं। लेकिन एक कब्र का उत्खनन स्थायी बस्तियों के प्रारम्भिक चिन्ह दर्शाता है जिसका काल 1000 ई. पू. का है। सारे स्रोत एकमत होकर इस बात की तरफ इशारा करते हैं कि प्रारम्भिक काल में रोम में राजतन्त्रीय (किंगशिप) प्रतिमान मौजूद था और 753 ई. पू. से 509 ई. पू. के दौरान इस क्षेत्र पर सात राजाओं ने शासन किया था। यह काल रोम के इतिहास में शाही काल (Regal Period) के रूप में दर्ज है तथा इस काल में प्रचलित शासन प्रणाली को शासन की शाही प्रणाली कहा जाता था। इसके अनुसार, राजा का पद वंशानुगत नहीं था, बल्कि निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से उनका चयन किया जाता था। यह निर्वाचन कुलीनों की परिषद (सीनेट) में से होता था और वयस्क पुरुष नागरिक बैठक के जरिये इसका अनुमोदन किया करते थे। लोग जब राजा के चुनाव के लिए मतदान करने जाया करते थे तो वे इकाइयों के रूप में एकत्रित होकर जाते थे। इन इकाइयों को क्यूराई (Curiae) कहा जाता था और सभा को क्यूरेट सभा के नाम से जाना जाता था। क्यूरेट सभा का मुख्य उद्देश्य सीनेट द्वारा किए गए नए चयन का अनुमोदन करना होता था। सरकार के कार्यकरण का विनियमन राजाओं की तुलना में कुलीनतन्त्रीय लोगों द्वारा अधिक होता था। तीन मुख्य क्षेत्रों में राजा की सत्ता सर्वोच्च होती थी – शासन, सेना और धर्म। समाज नागरिक और अनागरिक प्रतिमानों में विभाजित था। नागरिकों की इकाई को जनजाति (ट्राइब) कहा जाता था और विकास के प्रारम्भिक काल में, सिर्फ तीन ही जनजातियाँ थीं, लेकिन शताब्दी के अन्त तक आते-आते उनकी संख्या बढ़कर पैंतीस हो गयी। समाज अनुग्रह और कर्तव्य पर आधारित था तथा रोमन सेना में अनिवार्य सैनिक सेवा प्रदान करना इस समाज का एक बाध्यकारी पहलू था। प्रतिष्ठित परिवारों और साधारण परिवारों के बीच असामी (Clientalship) नाम से जानी जाने वाली एक प्रणाली के रूप में एक बन्धन था। इस प्रणाली में एक संरक्षक अपने असामी पर अनुग्रह करता है और अक्सर उसकी सहायता करता है, और इसके एवज में संरक्षक को जीविका, निष्ठा और आदर प्राप्त होता है।

509 ई. पू. तक राजा की शक्ति के स्थान पर दो दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) आ गए जिन्हें कौंसुल कहा जाता था और इस प्रकार अंकुरित गणतन्त्र ने अपनी सरकार का विकास करना शुरू किया। प्रारम्भ में ये कौंसुल अपनी शक्ति को सीमित समय के लिए अपने सहकर्मियों के साथ साझा किया करते थे। सरकार ने अपनी दो लोकप्रिय सभाओं के साथ अपना संचालन शुरू किया। इन सभाओं को कोमिटिया क्यूरियाटा (comitia curiata) और कोमिटिया सेंचुरियाटा (comitia centuriata) कहा जाता था। किसी आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए, सिर्फ छह महीनों की अवधि के लिए, तानाशाह (डिक्टेटर) नाम का एक विशिष्ट पद भी सृजित किया गया था। तानाशाह अक्सर अश्वाध्यक्ष (Master of horse) को द्वित्तीय स्थान की सत्ता के लिए नामित किया करता था।

16.3.1 राजनीतिक उथल-पुथल

451 ई. पू. से 494 ई. पू. के बीच के काल में रोम राजनीतिक उथल-पुथल का साक्षी बना। संघर्ष का मुख्य कारण कुलीनों के हाथों किया जाने वाला मनमाना संचालन तथा पुरानी बन्धन प्रणाली यानी असामी प्रणाली से प्राप्त शक्ति थी। निचले वर्गों में आने वाले साधारण लोग न्यायिक सुधार चाहते थे और साथ ही ऋण से और ऋण बन्धन व्यवस्था से मुक्ति के आकांक्षी थे। उनकी यह भी माँग थी कि नए पराजित क्षेत्रों को निर्धन लोगों में वितरित कर दिया जाए। रोमन गणराज्य की प्रारम्भिक अवस्था में, इसकी राजनीतिक व्यवस्था पर

पैट्रीशियनों का प्रभुत्व स्थापित हो गया और उनके प्रभुत्व के परिणामस्वरूप 494 ई. पू. तक साधारण लोगों (प्लेब्स) ने रोम को छोड़ दिया क्योंकि उनकी माँग पूरी नहीं की गयी थी। रोम को छोड़कर वे जैनिकुलम (Janiculum) चले गए जो एक नजदीकी पहाड़ी पर स्थित था और वहाँ उन्होंने एक समानान्तर राज्य का सृजन किया। अब वे पैट्रीशियन के प्रभुत्व वाले गणराज्य का आनन्द ले रहे थे। उनकी अपनी परिषद थी, निर्वाचित अधिकारी थे और उनके अपने संकल्प थे, जिन्हें जनमतसंग्रह (Plebiscite) कहा जाता था। साधारण जनों (प्लेब्स) की माँगों के दबाव के कारण, लिखित रूप में, रोम में पहली विधि संहिता का जन्म हुआ और इस प्रकार गणतन्त्रीय महत्व को देखते हुए प्लेबियन राज्य का रोम में विलय कर दिया गया तथा नए मजिस्ट्रेट की नियुक्ति की गयी जो प्लेब्स और पैट्रीशियन दोनों के लिए उपयुक्त था। जब धनी गैर-पैट्रीशियनों ने प्लेब्स के साथ हाथ मिला लिया तो 450 ई. पू. तक एक नए संघर्ष का प्रारम्भ हो गया। इस समांगीकरण के कारण सुधार का एक नया रूप सामने आया जिसके लक्ष्य अलग थे। समृद्ध प्लेब लोगों ने अब राजनीतिक व्यवस्था में प्रवेश की माँग करनी शुरू कर दी जबकि निर्धन प्लेब लोग सामाजिक-आर्थिक सुधारों की माँग करने लगे। 287 ई. पू. के बाद पैट्रीशियन-प्लेबियन विभेदों के कारण रोमन वैभव के विस्तार का मार्ग खुल गया। 493 ई. पू. में रेगिलस झील की लड़ाई में लैटिन लोगों पर विजय प्राप्त करके रोमन लोगों ने अपना विस्तार किया और इस लड़ाई के परिणामस्वरूप एक सन्धि हुई, जिसे "कैसियस की सन्धि" कहा जाता है। इस सन्धि के द्वारा एक नई व्यवस्था स्थापित हुई जिसे लैटिन लीग कहा जाता है। लैटिन लीग रोमनों और लैटिन लोगों के बीच के नए सम्बन्ध को परिभाषित करती थी। क्रमशः 343-341 ई. पू., 326-304 ई. पू. और 298-290 ई. पू. की कालावधि में तीन सैमनाइट युद्ध हुए जिनके कारण केन्द्रीय इटली पर रोमनों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। 275 ई. पू. के अन्त तक रोमन भूक्षेत्र का विस्तार पो घाटी के दक्षिण में दक्षिणी प्रायद्वीप तक हो चुका था। इटली में रोमनों के विस्तार के कारण संस्कृति, समाज और राजनीति के क्षेत्र में कुछ नयी प्रगतियों का मार्ग खुला। उदाहरण के लिए, सीनेट अधिक शक्तिशाली हो गयी, यह दौर आर्थिक लाभ के क्षेत्र में महान सुधार का साक्षी बना, जनसंख्या बढ़ गयी थी, विलासितापूर्ण घर-परिवारों के साथ-साथ घरों के प्रतिमानों में नवीन स्थापत्य का प्रादुर्भाव हुआ, इटली में और अधिक दास लाए गए तथा यूनानियों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी घटित हुआ।

16.3.2 उपनिवेशीकरण

सम्पूर्ण इटली में अपना विस्तार करने के बाद रोमनों के सामने प्रमुख चुनौती यह आयी कि इटली के भूभाग पर नियन्त्रण किस प्रकार स्थापित किया जाए। परिणामस्वरूप रोमनों ने एक नवीन योजना का सूत्रपात किया जिसे उपनिवेशीकरण (colonization) कहा गया। उन्होंने नए विजित क्षेत्रों में और रणनीतिक महत्व के स्थानों पर ऐसी कॉलोनियों की स्थापना की जिनमें रोमनों के साथ-साथ लैटिन लोग भी रहते थे। कॉलोनी में रहने वाले लोगों को लैटिनों के अधिकार प्राप्त थे। 381 ई. पू. तक उन्होंने "म्यूनिसिपियम" की स्थापना की, जिसका दर्जा कॉलोनी से नीचे हुआ करता था। इटली के दक्षिण में रोमनों ने सन्धिपरक राज्यों का विकास किया। इस प्रकार विकसित महासंघ में रोमन लोगों की कॉलोनियाँ शिखर पर थीं और इसके बाद म्यूनिसिपिया का स्थान था। सबसे अन्त में सन्धिपरक राज्य आते थे। इन परियोजनाओं की स्थापना के पश्चात रोमन उस स्थिति में आ गए जहाँ वे अपने मतदान-अधिकारों के गुणों के माध्यम से किसी समुदाय को ऊपर उठा सकते थे या नीचे गिरा सकते थे। रोम और सम्बन्धित समुदायों के बीच के द्विपक्षीय समझौते के कारण स्थानीय लोगों को अपने कल्याण के लिए रोम की देखभाल करने की स्वतन्त्रता हासिल हुई। ऐसी प्रणाली का अनुसरण करने के कारण रोमनों के पास सैन्य कर्मचारियों की विशाल संख्या उपलब्ध हो गयी। परिणामस्वरूप कुल रोमन सेना का आधा

हिस्सा इटली के रोमन महासंघ के उन राज्यों से भर्ती किया गया जिन राज्यों को प्रजा बना लिया गया था। प्रशासन का यह रूप रोमनों के लिए दूरगामी सुधार लेकर आया। अपनी सैन्य शक्ति के कारण रोमनों ने समुद्र के पार जाकर भी अपना विस्तार किया और उनकी सैन्य शक्ति संकट के समय उन्हें रक्षा और सुरक्षा उपलब्ध कराती थी।

प्रथम प्यूनिक युद्ध (264 ई. पू. से 241 ई. पू.) में अपने विशालतम नौसैनिक बेड़े की सहायता से रोम ने सिसिली के उपजाऊ द्वीप को पराजित कर दिया और ऐसा करके उन्होंने अपने प्रथम समुद्रपारीय प्रान्त की स्थापना की। द्वित्तीय प्यूनिक युद्ध (219 ई. पू. से 196 ई. पू.) के साथ रोमनों ने स्पेन में दो और नए प्रान्त स्थापित किए जिसके कारण वे पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के स्वामी हो गए और कब्जा किए गए नए स्पेनी क्षेत्रों पर नियन्त्रण के लिए नए स्थलमार्ग खुले।

16.3.3 रोम का यूनानीकरण (Hellenization)

जब रोमन लोग यूनानी संस्कृति के सम्पर्क में आए, तब तीसरी शताब्दी ई. पू. तक यूनानीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। रोमन शिक्षा प्रणाली में नुकसान की स्थिति आयी क्योंकि यह पूर्णरूपेण लैटिन साहित्य से प्रभावित थी। सीनेटरों के बच्चों को लैटिन पढ़ाने के लिए विशिष्ट शिक्षकों की नियुक्तियाँ की गयीं। पुस्तकों का लैटिन भाषा में अनुवाद प्रारम्भ हुआ। होमर की ओडिसी इन पुस्तकों में से एक थी। लैटिन लेखकों ने यूनानी शैली और अभिव्यक्ति के यूनानी तरीके में रुचि दर्शाना शुरू किया। प्रारम्भिक रोमन लेखकों ने यूनानी भाषा में लिखा, अनेक अध्यापक और शिक्षक यूनान से थे, यूनानी दूतावास के कर्मचारी रोम की यात्रा किया करते थे और व्याख्यान दिया करते थे। इस प्रकार, यूनानियों द्वारा रोमन साहित्य का यूनानीकरण कर दिया गया। यूनानियों का प्रभाव केवल साहित्य और भाषा पर ही नहीं पड़ा, बल्कि रोमन कला और स्थापत्य भी यूनानीकृत हो गया। रोमनों ने उनकी कला की प्रशंसा पुरस्कारों के माध्यम से शुरू की। भवनों के लिए जहाँ पहले मुख्य संसाधन के रूप में लकड़ी और मिट्टी की ईंटों तथा पत्थरों का प्रयोग किया जाता था, वहाँ अब संगमरमर का प्रयोग किया जाने लगा। अब भवनों की भव्यता और खर्चीले अभिकल्पन (डिजाइन) पर अधिक जोर दिया जाने लगा।

रोमन लोगों ने यूनानियों की भाषा और सामाजिक व्यवहारों के साथ-साथ उनके परिधानों के प्रतिमानों को भी अपना लिया।

बोध प्रश्न 1

1) इटली के इतिहास के बारे में संक्षेप में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) रोम के यूनानीकरण (हेलेनाइजेशन) से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

16.4 रोमन गणराज्य में शासन विधि (गवर्नेंस)

रोम की शासन-विधि (गवर्नेंस) का तरीका उनके नवाचारों और सामाजिक रूढ़िवादिता के साथ-साथ उनके विस्तार का परिणाम था। सरकार का संचालन दो स्तम्भों द्वारा होता था दृ नागरिकों की बैठकों द्वारा और शासकीय अधिकारियों द्वारा। इन शासकीय अधिकारियों को दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) कहा जाता था। नागरिकों की बैठकें भी सीनेट और सभाओं (असेम्बली) में विभाजित थीं। सीनेट से जुड़े हुए अधिकारियों को दण्डाधिकारी कहा जाता था। इन दण्डाधिकारियों का निर्वाचन एक साल की अवधि के लिए मतदान द्वारा किया जाता था। सभाओं से दो प्रकार के अधिकारी संलग्न रहते थे जिन्हें साधारण लोगों (Plebs) के ट्रिब्यून्स और एडाइल्स (Aediles) कहा जाता था। दण्डाधिकारी की प्रमुख भूमिका यह थी कि वह कर्मकाण्डों का आयोजन कराता था और कुछ मामलों में वह धार्मिक कार्यों में भाग भी लेता था। सीनेट सर्वोच्च संस्था थी और इसके पास कोई विधिक अधिकार नहीं थे। सीनेट का साधारण काम सलाह देने का था। सीनेट से जुड़े दण्डाधिकारी राज्य के प्रमुख अधिकारी हुआ करते थे। सीमित पदावधि और सामूहिकता (Collegiality) शक्ति की साझेदारी को सुनिश्चित करने वाले दो उपकरण थे। 150 ई.पू. के अन्त तक आते-आते क्रमबद्ध तरीके से अधिक दायित्व और सत्ता पर बल देते हुए एक पदसोपानीय प्रशासन व्यवस्था लागू कर दी गयी। कोषाध्यक्ष (Quaestors) सबसे कनिष्ठ दण्डाधिकारी होते थे और इनके पास विस्तृत वित्तीय शक्तियाँ होती थीं। इनके लिए योग्यता के मापदण्ड निर्धारित किए गए थे। इस पद के लिए यह आवश्यक था कि अभ्यर्थी की आयु पच्चीस वर्ष से कम न हो। दस व्यक्तियों का चयन प्रतिवर्ष किया जाता था। एडाइल्स को नगर के निर्माण के साथ-साथ खेलकूद के दायित्व सौंपे गए थे। इस पद के लिए अधिकतम आयु सीमा छत्तीस वर्ष की होती थी और वार्षिक रूप से चार व्यक्तियों का चुनाव किया जाता था। प्रीटर्स (Praetors) को न्यायिक, राजनीतिक और सैन्य कार्यों की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। इस पद को धारित करने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक था कि उसकी आयु कम से कम उनतालीस वर्ष की हो। प्रत्येक वर्ष छह प्रीटर्स का चुनाव किया जाता था। मुख्य दण्डाधिकारियों को कौंसुल कहा जाता था और उनके पास राजनीतिक, न्यायिक और सैन्य शक्तियाँ होती थीं। इस पद को धारित करने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक था कि उसकी आयु कम से कम बयालीस वर्ष की हो और प्रत्येक वर्ष दो व्यक्तियों का चुनाव किया जाता था। इन अधिकारियों के अलावा दो जनगणना-नियन्त्रक भी होते थे जिनका चुनाव किया जाता था। इनका प्रमुख कर्तव्य रोमन नागरिकों की जनगणना के आँकड़ों को एकत्र करना होता था। इसके अतिरिक्त वे कर, सार्वजनिक निर्माण आदि से जुड़ी सूचनाओं को एकत्र करने के लिए भी जिम्मेदार थे। किसी विशिष्ट मामले के सम्बन्ध में तानाशाह (डिक्टेटर) नियुक्त करने का भी प्रावधान मौजूद था। तानाशाह दण्डाधिकारी द्वारा किसी विशिष्ट परिस्थिति से निपटने के लिए नामित किए जाते थे। जब तक तानाशाह को सौंपा गया कार्य पूरा न हो जाए, तब तक के लिए उसकी पदावधि सुरक्षित थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यह रोमन शासन-विधि सच्चे अर्थों में एक ऐसी शासन-विधि थी जहाँ लोगों से रू-ब-रू होते हुए भौतिक तरीके से शासन चलाया जाता था। राज्यों के सुचारू कार्यकरण को सुनिश्चित करने के लिए सभाओं की व्यवस्था लागू की गयी थी। ये सभाएँ रोमन राज्य में विनियामक संस्थाएँ थीं। रोम में चार सभाएँ प्रचलित थीं। "क्यूरिएट" सभा सबसे पुरानी थी जो दण्डाधिकारियों को शक्ति प्रदान करती थी। "सेंचुरिएट" सभा सैन्य-केन्द्रित बैठकों के कामकाज को सँभालती थी तथा इसका मुख्य कार्य युद्ध और शान्ति से सम्बन्धित कानूनों को पारित करना था। "साधारण लोगों (प्लेब्स) की जनजातीय सभा" अथवा "साधारण लोगों की परिषद" एक ऐसा निकाय था जो प्लेबियन राज्य के मामलों की देखरेख करता था। प्लेबियन राज्य को गणराज्य में एक राज्य के रूप में मान्यता मिली हुई

थी। इस निकाय को गणराज्य में मुख्य विधायी निकाय का दर्जा हासिल था जबकि "लोगों की जनजातीय सभा" का गठन पैट्रीशियंस के साथ-साथ प्लेब्स को भी इस जनजातीय सभा का मुख्य संघटक मानते हुए किया गया था। प्रत्येक सभा के अधिकारियों का चयन इसके नागरिकों के मताधिकार की शक्ति के द्वारा किया जाता था और इसके कारण अधिकारियों का चयन तार्किक तरीके से होता था।

साम्राज्य की वृद्धि के कारण सामाजिक और राजनीतिक मामलों पर गहरा दबाव पड़ा। 133 ई.पू. तक ग्रैकस (Gracchus) नामक एक कुलीन व्यक्ति ने भूमि सुधार का मार्ग खोला। उसने प्रस्ताव किया कि जिन व्यक्तियों के पास अधिशेष सरकारी भूमि है, वे उसे राज्य को वापस कर दें और बाद में इस तरीके से वापस की गयी भूमि को भूमिहीनों में वितरित कर दिया जाना चाहिए। यद्यपि इस प्रयास में ग्रैकस को अपनी जान गँवानी पड़ी लेकिन फिर भी, रोम की घरेलू राजनीति में पहली बार भूमि सुधार की इस कार्ययोजना को खड़ा करने के अपने उद्देश्य में उसे सफलता मिली। ग्रैकी बन्धुओं के प्रयासों के कारण रोम में क्रान्ति आ गयी और सहमति की पुरानी परम्परा को पूर्ण रूप से बदल दिया गया यानी गणराज्य का पूर्ण रूप से विध्वंस हो गया। इस घटना के बाद रोमन राजनीति दो भागों में ध्रुवीकृत हो गयी। पहला भाग "लोकप्रियों" का था जो जनजातीय सभा ट्रिब्यून का अनुसरण करते थे जबकि दूसरा भाग "रईसों" का था जो पारम्परिक प्रतिमानों का यानी सीनेट आधारित गतिविधियों का अनुसरण किया करते थे।

मैरियस के सुधारों के कारण रोम की सेना में कुछ परिवर्तन आए। मैरियस ने प्रत्येक अप्रयुक्त सैनिक का राज्य की लागत पर नामांकन किया और इन सैनिकों को इनकी सेवाओं के बदले भूमि प्रदान की गयी। ऐसे कार्यों के परिणाम के कारण रोमन सेना के राजनीतिकरण का रास्ता खुल गया। अगले कुछ दशक अनेक जनरलों के उत्थान और पतन तथा राजनीतिक अस्थायित्व के साक्षी बने जिसके कारण राज्य में गृह युद्ध और उथल-पुथल की एक श्रृंखला खड़ी हो गयी। 31 ई. पू. में आगस्टस के अन्तर्गत शाही शासन के सृजन के बाद अपेक्षाकृत क्रान्तिकारी शान्ति का एक दौर आया। प्रारम्भ में आगस्टस ने रोम में प्रचलित गृह युद्धों को रोकने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। साथ ही साथ अपने सिद्धान्त के माध्यम से वह रोमन राज्य में राजनीतिक स्थायित्व लेकर आया। इम्पीरियम की रचना उसकी प्रमुख उपलब्धियों में से एक थी जिसके माध्यम से उसने बहुत सारे अधिकार और विशेषाधिकार हासिल किए। वह रोम के प्रीस्टली कॉलेज का सदस्य बन गया और उसे मुख्य पुजारी भी घोषित किया गया। आगस्टस को रोम का पिता भी घोषित किया गया और इस प्रकार उसे परिवार का मुखिया बना दिया गया। आगस्टस की मृत्यु के बाद उसके पाँच उत्तराधिकारियों ने गद्दी सँभाली और 14 ई. तक शासन किया। आगस्टस राजवंश के पतन के बाद जूलियो क्लॉडियन राजवंश ने 14 ई. से 68 ई. तक शासन किया। जूलियो क्लॉडियन राजवंश का अन्त हो गया और सन् 69 ई. तक अनेक गृह युद्ध प्रारम्भ हो गए। उथल-पुथल भरी इस परिस्थिति के कारण एक नए राजवंश फ्लेवियन (69 ई. से 96 ई. तक) को बाहुबल के आधार पर सत्ता हासिल करने का अवसर मिला। जूलियो क्लॉडियन राजवंश के पतन ने भी गृहयुद्धों का दौर देखा। ये गृहयुद्ध प्रिंसिपेट के प्रतिमान को जारी रखते हुए चल रहे थे यानी सम्पूर्ण इतिहास के दौरान उत्तराधिकार की समस्या कायम रही। एक के बाद एक विभिन्न राजवंशों ने स्थायित्व लाने का प्रयत्न किया किन्तु गृहयुद्धों के कारण वे असफल रहे। रोम पर शासन करने वाले सम्राटों की श्रृंखला इस प्रकार रही – 69 ई. से 96 ई. तक फ्लेवियन राजवंश, इसके बाद एण्टोनाइन या स्वीकार्य (Adoptive) राजवंश जिसने 98 ई. से 180 ई. तक शासन किया। बाद में एण्टोनाइनों को सेवेरनों (Severans) द्वारा हटा दिया गया। सेवेरनों ने 193 ई. से 235 ई. के बीच शासन किया था।

स्थायी सरकार के अभाव में रोम के सीमावर्ती क्षेत्रों पर पश्चिमी क्षेत्र से दबाव पड़ने लगा। पोलेण्ड से गोथ (Goths) जैसी नई जनजातियाँ दिखनी प्रारम्भ हुईं। 265 ई. तक गोथ लोगों ने कोरिंथ के साथ-साथ एथेंस और ओलम्पिया पर भी अधिकार कर लिया था। तीसरी शताब्दी ई. में रोमन लोगों को एक संकट का सामना करना पड़ा और इसका एक परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य की तीन इकाइयों में विभाजित कर दिया गया। प्रत्येक इकाई स्थानीयकृत शासन की देखरेख में संचालित होती थी जो बाहरी खतरों से निपटने में पूर्णतः सक्षम थी। पश्चिमी प्रान्त को रोमन साम्राज्य से अलग कर दिया गया और पश्चिमी प्रान्त ने अपना स्वयं का एक राज्य गठित किया जिसकी बारह वर्षों तक अपनी सीनेट रही, अपनी सेना, सम्राट और विदेश नीति रही। पूर्व दिशा में यह पालमायरा (Palmyra) ही था जो केन्द्रीय सत्ता से अलग होने के लिए जिम्मेदार था।

16.4.1 रोमन समाज

रोमन समाज कठोर श्रेणीतन्त्रों से प्रभावित था और राज्य-कानून से निर्धारित होता था। समाज दासों और स्वतन्त्रजनों (Freeborns) में विभाजित था। 212 ई. तक आते-आते समाज में एक अगला विभाजन भी आ गया। यह नागरिकों और अनागरिकों के बीच था जहाँ नागरिकता के कारण न्यायिक साम्राज्य की नींव पड़ी। सीनेटरों को सबसे अधिक समृद्ध और सर्वाधिक सम्मानित माना जाता था। यद्यपि घुड़सवार (Equestrians) भी समान सामाजिक-आर्थिक वर्ग से आते थे लेकिन सीनेटरों की तुलना में उनका दर्जा नीचे माना जाता था। कस्बाई (टाउनशिप) प्रबन्धन में डिक्यूरियन (Decurion) का प्रादुर्भाव हुआ। आम लोगों (commoners) को प्लेब्स की श्रेणी के अन्तर्गत रखा गया।

प्रत्येक ओहदे की प्रस्थिति कानून द्वारा निर्धारित थी। सीनेट का सदस्य, घुड़सवार और डिक्यूरियन बनने के लिए योग्यता का निर्धारण न्यूनतम सम्पत्ति के आधार पर किया जाता था। स्वतन्त्रजनों, विशेषाधिकार-प्राप्त लोगों और गैर-विशेषाधिकारयुक्त लोगों के अधिकारों की रक्षा न्यायिक प्रणाली द्वारा की जाती थी। सीनेट के प्रत्येक सदस्य, प्रत्येक घुड़सवार और प्रत्येक डिक्यूरियन के लिए सार्वजनिक कामकाज में शामिल होना अनिवार्य था। प्रत्येक सदस्य की प्रस्थिति को प्रस्थिति के प्रतीक द्वारा चिन्हांकित किया जाता था। सीनेटरों से बैगनी पट्टी वाला एक चोगा (Toga) पहनने की उम्मीद की जाती थी और सार्वजनिक समारोहों के दौरान उन्हें आगे वाली सीट पर एक दर्शक के रूप में बैठना होता था जबकि घुड़सवार बैगनी पट्टी वाले एक पतले चोगे के साथ-साथ सोने की अँगूठी पहना करते थे और सीनेटरों के पीछे वाली पंक्ति में बैठा करते थे। परम्परा और असामी ही ऐसी चीजें थीं जो वर्गों और कोटियों के बीच सम्बन्धों को तय करती थीं। हालाँकि संरक्षक-असामी सम्बन्ध की प्रथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुली नहीं होती थी, लेकिन ऐसे सम्बन्ध मान और वरीयताओं की आदतों के कारण उल्लेखनीय थे। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि ऐसे सम्बन्धों को कायम रखने में कुछ परिवार किस तरह सफल रहे जबकि वहाँ एक स्वतन्त्र मतदान प्रणाली का प्रावधान था। यद्यपि वर्गों के बीच विभाजन मौजूद थे लेकिन रोमनों ने जिस प्रणाली को प्रस्तुत किया, वह बहुत लम्बे समय तक चलती रही। केन्द्रीय स्थान पर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति होता था, जो चारों ओर से विस्तृत परिवारों और अभिसाक्षियों से घिरा रहता था। इन विस्तृत परिवारों और अभिसाक्षियों की प्रस्थिति ऊपर-नीचे होती रहती थी। स्थलाकृति स्वयं बताती है कि रोम में कस्बाई (टाउनशिप) योजना इस प्रकार थी कि महत्ता वाले घर यहाँ-वहाँ बिखरे हुए होते थे तथा उच्चवर्गीय समाज वाले इन घरों को झुग्गियों के साथ समूहीकृत नहीं किया जाता था। यह एक तथ्य है कि रोमनों ने अपने समाज में समानता उपलब्ध कराने के बारे में कभी नहीं सोचा।

16.4.2 परिवार

प्रत्येक रोमन परिवार का आधार भूमि का स्वामित्व था क्योंकि भूमि के बिना रहने वाले परिवार या तो दास थे या किसी दूसरे व्यक्ति की भूमि पर किरायेदार थे। परिवार की आकृति विस्तृत थी और यह वर्तमान नाभिकीय परिवार की कल्पना से परे थी। उच्चवर्गीय परिवारों में वंशगत या पुश्तैनी अवधारणा विद्यमान थी जो सम्पत्ति के हस्तांतरण को परिवार के भीतर ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सुनिश्चित करती थी। परिवार का वरिष्ठतम सदस्य सर्वोच्च होता था। पिता (वरिष्ठतम सदस्य) को पितास्वरूप शक्तियाँ (Paterfamilias) मिला करती थीं तथा वह एक ही छत के नीचे रहने वाले परिवार के अन्य सदस्यों के मार्गनिर्देशन का कार्य भी किया करता था। वरिष्ठतम जीवित सदस्य (Paterfamilias) के पास अपने परिवार के किसी सदस्य को पीटने, मार डालने और दासता में भेज देने की पूर्ण सत्ता हुआ करती थी। वह परिवार के सदस्यों से सम्बन्धित सभी सम्पत्तियों का स्वामी भी हुआ करता था। सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए यदि किसी परिवार में कोई पुत्र या बच्चे नहीं होते थे तो उन परिवारों को यह विकल्प दिया जाता था कि वे अपने विस्तृत परिवार के किसी पुरुष सदस्य को अभिभावक नियुक्त कर लें। उसके पास परिवार में जन्म लेने वाले सभी शिशुओं के नामकरण का भी अधिकार होता था। परिवार के सदस्यों को दण्डित करने का भी प्रावधान मौजूद था लेकिन ऐसा "परिवार परिषद" नामक एक सांविधिक निकाय से सलाह लेने के उपरान्त ही किया जा सकता था, जिसके निर्णय सामाजिक रूप से बाध्यकारी थे। पूर्वजों का बहुत सम्मान किया जाता था। वे वंशगत या पुश्तैनी गरिमा को कायम रखते थे। परिवार अपने मृत पूर्वजों के मोम के मुखौटे और आवक्ष प्रतिमाएँ रखा करते थे और अन्तिम संस्कार के समय उनकी पूजा की जाती थी ताकि अतीत में राज्य के प्रति परिवार द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं को गौरवान्वित किया जा सके। ऐसा लगता है कि रोमन सभ्यता में प्रेम विवाह की अवधारणा विद्यमान नहीं थी और वे परिवारों की सहमति के आधार पर किए जाने वाले विवाहों को वरीयता प्रदान करते थे। विवाह के बाद दुल्हन अपने पति के परिवार में चली जाया करती थी जहाँ वह अपने श्वसुर और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रहती थी।

16.4.3 महिलाओं की दशा

रोमन साम्राज्य में महिलाओं की दशा कानूनों द्वारा सुरक्षित थी। प्रत्येक स्वतन्त्रजन (फ्रीबॉर्न) महिला पूरे जीवन अनिवार्य रूप से किसी कानूनी अभिभावकत्व के अधीन रहती थी। रोमन महिलाएँ शिक्षित थीं और सम्पत्तियों के उत्तराधिकार में सक्षम थीं। महिलाओं का दहेज की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर नियन्त्रण होता था जो उसे विवाह के समय मिलती थी और जिसे वह लेकर आती थी। फिर भी, पुरुषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति सामीप्यता की तरफ उन्मुख थी। महिलाओं को कमजोर माना जाता था लेकिन कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जो उनकी उच्च सार्वजनिक प्रतिष्ठा को चित्रित करते हैं। सारे घरेलू मामलों की संचालिका महिला ही होती थी। यौनिक सद्गुण (Pudicitia), शिक्षा और सहमति के मामलों में महिलाओं को आदर्श मानते हुए रोमन लोगों ने अपनी स्त्रियों को अत्यधिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी किन्तु यह स्वतन्त्रता एक सीमित दायरे के भीतर ही प्राप्त थी और इस दायरे का उल्लंघन करने वाली दोषी स्त्रियों को समाज द्वारा दण्डित किए जाने का भी प्रावधान था। रोमन साम्राज्य में महिलाएँ उच्चस्तरीय सार्वजनिक जीवन का आनन्द लिया करती थीं। "यूमेशिया" जैसे कुछ प्रसिद्ध सार्वजनिक भवनों के निर्माण में महिलाओं का ही योगदान रहा है। कुछ स्रोतों के अनुसार, निम्नवर्गीय महिलाओं को उच्चवर्गीय महिलाओं की तुलना में अधिक स्वतन्त्रता हासिल थी। प्रमाण यह भी दर्शाते हैं कि सार्वजनिक स्थलों पर महिलाएँ पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर कार्य किया करती थीं। स्रोत आगे यह भी बताते हैं कि दास महिलाओं को बहुत कठिन समय का सामना करना पड़ता था क्योंकि पुरुष

दासों के साथ अधिसेविता (Servitude) साझा करने के अतिरिक्त बहुत सारे अवसरों पर उन्हें यौन शोषण भी झेलना पड़ता था।

16.4.4 रोमनों में दासता

दासता को पूरी दुनिया में एक निचले दर्जे का काम माना जाता रहा है और रोम में भी बिना किसी मानक के इस परम्परा का अनुसरण किया जाता था। रोम में दासों का निर्धारण उनके रंग या जाति के आधार पर नहीं किया जाता था, बल्कि उनकी प्रस्थिति के आधार पर किया जाता था। रोमनों के कानून के अनुसार, दासों को सम्पत्ति माना जाता था। दासों को किसी भी प्रकार की कोई कानूनी सुरक्षा प्राप्त नहीं थी और उन पर पूरी सत्ता उनके स्वामी की ही हुआ करती थी। दास वस्तु की तरह ही होते थे और मवेशियों की तरह उन्हें भी बेचा और खरीदा जाता था। साहित्यिक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि रोम में दासों की पाँच श्रेणियाँ मौजूद थीं। दासों की पहली श्रेणी में युद्धबन्दियों को शामिल किया जाता था। घर-परिवार में काम करने वाले दासों से जन्म लेने वाले बच्चों को "वर्नी (Vernae)" कहा जाता था। दासों पर कुछ प्रतिबन्ध थे; जैसे उन्हें कानूनी विवाह करने का कोई अधिकार नहीं था लेकिन उन्हें यौन सम्बन्ध स्थापित करने की आजादी थी तथा उनके बच्चों को केवल दास की ही प्रस्थिति मिल सकती थी। अनचाहे बच्चों को भी दासता की प्रथा में डाल दिया जाता था। दासों की एक दूसरी श्रेणी भी थी जिसमें वे लोग शामिल किए जाते थे जो अच्छी गुणवत्ता की वस्तुएँ हासिल करने के लिए रोम की सीमाओं को पार करते थे। चूँकि व्यापारिक व्यवहार रोम की सीमाओं के बाहर तक मौजूद था इसलिए विलासितापूर्ण वस्तुएँ साम्राज्य के बाहर उपलब्ध थीं और इसका परिणाम रोमनों में दासता के रूप में सामने आया। दासों के जीवन की परिस्थितियाँ उसके स्वामी की इच्छा पर निर्भर थीं। विश्वस्त और प्रशिक्षित दास थोड़े आराम के साथ-साथ कुछ स्वतन्त्रताओं का आनन्द भी प्राप्त कर सकते थे। दासों को ठाठ-बाट की अनुमति नहीं थी और किसी भी मामले में सारे दास शुद्ध रूप से अपने स्वामियों के विवेक पर ही आधारित थे। क्रूर व्यवहार के रूप में उन्हें दण्डित करने की प्रथा भी मौजूद थी। दासों का समाज प्रस्थिति के हिसाब से विभाजित था क्योंकि कस्बों में काम करने वाले दास स्वयं को रियासतों में काम करने वाले दासों की तुलना में बेहतर मानते थे। कुशल दासों को अकुशल दासों की तुलना में वरीयता दी जाती थी। कुछ दास ऐसे होते थे जिन्हें अन्य दासों के लिए प्रभारी बनाया जाता था। समृद्ध रोमन लोग हजारों दासों के स्वामी हो सकते थे। हालाँकि दासों को दैनिक आधार पर बहुत संघर्ष करना पड़ता था और उनके स्वामी उन्हें आलसी, अविश्वसनीय और धोखेबाज मानते थे।

परवर्ती काल में दासों को भूस्वामियों की सम्पत्तियों पर बसने की अनुमति प्रदान कर दी गयी और उन्हें अपनी देखभाल करने के लिए छोटे-छोटे भूखण्ड प्रदान किए गए। दास की सम्पत्ति को पेक्युलियम (Peculium) कहा जाता था। दासों को खनन, निर्माण और घरेलू कार्य में भी नियोजित किया जाता था तथा वे राज्य और समाज के निम्नतम स्तरों पर भी कामकाज किया करते थे।

इतिहास में यह उल्लेखनीय है कि मुक्त किए गए दासों ने रोमन समाज में प्रतिष्ठित नागरिक निकायों में उल्लेखनीय ओहदों पर कार्य किया था लेकिन इसके विपरीत उन्हें अनेक अधिकारों से वंचित भी रखा जाता था। ऐसे दासों की स्वतन्त्रता शुद्ध रूप से उनके स्वामियों की इच्छा पर निर्भर रहती थी और ऐसे कार्य प्रायः स्वामियों की उदारता और उनकी सम्पत्ति के परिचायक होते थे। दासों की मुक्ति मानवता को कम और इस अवसर को अधिक प्रदर्शित करती है कि जब भी आवश्यकता हो तब उन्हें एक निष्ठावान दास के रूप में किराये पर लिया जा सकता था। कुछ मामलों में ये दास अपने स्वामियों के लिए एक मुवक्किल की तरह कार्य करते थे तथा अतीत के कार्यों को जारी रखने के लिए तैयार

रहते थे। दासों की मुक्ति का निर्धारण एक अनुष्ठान के माध्यम से होता था जिसे "दासत्वमुक्ति (manumission)" कहा जाता था और इसका निष्पादन कानून के पर्यवेक्षण में किया जाता था।

राज्य का तन्त्र पूर्ण रूप से दासों के कठोर परिश्रम पर निर्भर था। उत्पादन की दासत्व प्रणाली में संकट के कारण रोमन साम्राज्य में संकट उत्पन्न हो गया। दासों की आपूर्ति युद्धों से सम्बन्धित थी और जब रोमन साम्राज्य का विस्तार रुक गया तो दासों की लागत बहुत अधिक बढ़ गयी।

16.5 नगरीय अवस्थापना

नगरों को शासित करने वाला प्रशासन नगरपालिका सम्बन्धी प्राधिकारियों के अन्तर्गत था। रोमन लोगों की अधिशेष भूमि प्रशासन चलाने के लिए नगरों को दान में दे दी गयी थी। रोमन साम्राज्य ने साम्राज्य को विभिन्न नगरपालिका भूक्षेत्रों में विभाजित कर दिया; जैसे – नगरीय भूभाग, कृषि भूभाग, सम्पत्तियाँ और गाँव। प्रत्येक नगर के पास अपनी शासन-विधि की योजना हुआ करती थी तथा प्रत्येक नागरिक स्थानीय राजनीति में सहभागिता करने के लिए स्वतन्त्र था। इन नगरों की जनसंख्या बहुत कम थी और प्रत्येक नगर इटली को पराजित करने के पश्चात रोमनों द्वारा लागू की गयी श्रेणीकरण व्यवस्था के अध्यधीन था। स्थानीय तानाशाहों के साथ-साथ वार्षिक दण्डाधिकारियों की नियुक्ति भी की गयी। इन स्थानीय प्राधिकारियों का प्रमुख कर्तव्य करों का संग्रहण करना, विवादों का समाधान करना तथा नगर और इसके भूक्षेत्र के सुचारू संचालन को सुनिश्चित करना होता था। स्थानीय प्राधिकारी सार्वजनिक भवनों के निर्माण और रखरखाव के लिए भी उत्तरदायी थे। रोमन नगरों के पास अनेक मंच मौजूद थे और वे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और न्यायिक केन्द्र के रूप में विभाजित थे। यह मंच नौ दिनों तक चलने वाले एक बाजार का आयोजन किया करता था। नगर में सारे चुनाव सम्पन्न होते थे। मंचों पर अवस्थित मन्दिर में महत्वपूर्ण धार्मिक उत्सवों का आयोजन किया जाता था। नगरों में मनोरंजन और थियेटर की गतिविधियों आदि के रूप में समारोहों का आयोजन किया जाता था। ऐसे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बैसिलिका (Basilica) का निर्माण किया गया था। नगर में सरायों, जलपान की दुकानों, सार्वजनिक शौचालयों तथा मनोरंजन और आराम के लिए स्थलों जैसी सुख-सुविधाएँ मौजूद थीं। सभी रोमन नगरों में दुकानों, मधुशालाओं, सार्वजनिक सुविधाओं जैसी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं। कृत्रिम जलमार्गों की दृष्टि से नगर भलीभाँति नियोजित था। इस व्यवस्था में रोमन लोग नजदीकी झरने से जल प्राप्त किया करते थे तथा नालियों के माध्यम से इस जल को नगरीय उपयोग के लिए भेजा करते थे। रोमन नगरों में घरों के प्रतिमान अपार्टमेंट्स के रूप में थे तथा इनके निवासियों की आर्थिक स्थिति को चित्रित करते थे। रोमन नगरों में सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) प्रारूप प्रचलित था क्योंकि बहुत सारी इमारतों का निर्माण और रखरखाव स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा किया जाता था। सार्वजनिक लाभ के लिए निजी कोष का उपयोग करने की प्रणाली को रोमन साहित्य में "युरजेटिज्म (Euergetism)" कहा गया है। निवासियों द्वारा मिलने वाली उत्तम-छवि, प्रतिष्ठा और प्रस्थिति के कारण उच्चवर्गीय लोग स्थानीय लोगों के लिए बुनियादी सार्वजनिक सेवाएँ और मनोरंजन उपलब्ध करा देते थे।

16.6 रोमन साम्राज्य में मनोरंजन के साधन

एक अनिवार्य कार्य जिसका उल्लेख रोमन साहित्य में "युरजेटिज्म (Euergetism)" के प्रावधान के अन्तर्गत किया गया है यह था कि यहाँ के निवासियों को मनोरंजन और

सहूलियत उपलब्ध कराया जाए। मनोरंजन और फुर्सत की सुविधा परवर्ती गणतन्त्रीय (रिपब्लिकन) और प्रारम्भिक शाही (इम्पीरियल) कालों के दौरान प्रस्तुत की गयी थी। सम्राटों द्वारा फुर्सत में ऐसे समारोहों के आयोजन का मुख्य उद्देश्य लोकप्रियता हासिल करना होता था। तलवारबाजी के अतिरिक्त सार्वजनिक फुर्सत के दो सर्वाधिक लोकप्रिय रूप सार्वजनिक स्नान और रथदौड़ थे। सार्वजनिक स्नान रोमन सभ्यता का एक प्रतीक था और यह दैनिक जीवन की एक आवश्यकता थी। रोमन भवनों में अनेक सुविधाओं से युक्त ऐसे स्नान-स्थलों की उपलब्धता इसके महत्व पर प्रकाश डालती है क्योंकि यह स्नान-स्थल प्रत्येक रोमन इमारत का एक मुख्य संघटक हुआ करता था, चाहे वह गाँव-देहात की कोई इमारत हो या कोई किला ही क्यों न हो। गर्म कमरों की एक क्रमबद्ध पंक्ति हुआ करती थी जिससे होकर स्नान करने वाला प्रत्येक व्यक्ति कतारबद्ध तरीके से आगे बढ़ता था। इन गर्म जलकुण्डों में स्नान करने वाले लोग सामुदायिक स्नान की प्रक्रिया में साझेदार हुआ करते थे। यदि किसी व्यक्ति की इच्छा तरोताजा होने की होती थी तो उसे पूरे परिपथ का चक्कर लगाना पड़ता था और इसीलिए स्नान-कार्य (अनुष्ठान) की इस गतिविधि में काफी समय खर्च होता था। यह ऐसा स्थल था जहाँ रोम के लोग मिलते थे, गपशप करते थे, आराम करते थे, पीते थे, पार्टियाँ मनाते थे और एकत्र होते थे। यह मौज-मस्ती से जुड़ी अनेक गतिविधियों का एक केन्द्र था। साम्राज्य में हर जगह पर ऐसे स्नानागार मौजूद हुआ करते थे; चाहे यह स्थानीय रूप से संचालित विशाल स्नानागार हों, जिनका निर्माण सम्राट के कोष की सहायता से कराया जाता था या निजी रूप से संचालित स्नानागार हों, जिन्हें एक व्यवसाय के दृष्टिकोण से चलाया जाता था। रोमन लोगों के लिए जनता के मनोरंजन का एक अन्य साधन रथदौड़ हुआ करता था। यह रोमन लोगों द्वारा आयोजित की जाने वाली सर्वाधिक लोकप्रिय घटना हुआ करती थी। रथदौड़ यद्यपि एक प्राचीन परिघटना थी, लेकिन इसे गौरव रोमन लोगों द्वारा ही हासिल हुआ जब उन्होंने जनता के मनोरंजन के एक साधन के रूप में इसे प्रोत्साहित किया। उपलब्ध साहित्यिक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि इस रथदौड़ का आयोजन सर्कसों में किया जाता था जो चार-मंजिल की ऊँचाई वाले होते थे और दो लाख से अधिक दर्शकों को आकृष्ट किया करते थे। अधिकांश दर्शक रथदौड़ के कट्टर समर्थक हुआ करते थे। इस प्रकार की रथदौड़ों का जब आयोजन किया जाता था तो सम्पूर्ण नगर लगभग वीरान हो जाया करता था। रथदौड़ चार टीमों या धड़ों में विभाजित होती थी – श्वेत, नीला, हरा और लाल। नियमित तौर पर प्रत्येक धड़े से तीन प्रतिभागी हिस्सा लिया करते थे। रथ दो, चार या छह घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले वाहन होते थे। जब दौड़ के दौरान कोई रथ नष्ट हो जाया करता था, तब कभी-कभार यह रथदौड़ अपनी प्रकृति में हिंसक हो जाया करती थी। जब दौड़ की प्रक्रिया जारी रहती थी तब इसका मुख्य आकर्षण यह होता था कि लोग रथों पर दाँव या शर्त लगाया करते थे। रथों के चालकों की छवियों को चित्रित करने वाली उनकी कब्रें इस खेल की जटिलताओं और लालसाओं को सिद्ध करती हैं।

रोमन साम्राज्य में मनोरंजन का सर्वाधिक लोकप्रिय एक अन्य साधन तलवारबाजी (ग्लेडिएटर) थी जिसका आयोजन अन्तिम संस्कार के अवसर पर किया जाता था। ऐसे खेलों का आयोजन उन जगहों पर होता था जिनका निर्माण एक स्टेडियम के रूप में इसी उद्देश्य के लिए किया जाता था। इस स्टेडियम को एरीना (Arena) कहा जाता था। ग्लेडियर शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द "Gladiators" से हुई है जिसका प्रयोग तलवारबाजों द्वारा रखी जाने वाली छोटी तलवार को निर्दिष्ट करने के लिए किया जाता था। यह छोटी तलवार तलवारबाजों का प्रमुख हथियार होती थी। कोलोसियम (Colosseum) सबसे बड़े एरीनाओं में से एक था, जहाँ पचास हजार से अधिक दर्शक एक साथ बैठकर मनोरंजन का आनन्द लिया करते थे। तलवारबाज लोग पेशेवर लड़ाके होते थे जो विशिष्ट अस्त्र-शस्त्र और हथियारों को चलाने में तथा मार्शल आर्ट में दक्ष होते थे। इनकी प्रतियोगिता सचमुच जीवन

या मृत्यु का प्रश्न हुआ करती थी, उनके सामने दो ही विकल्प होते थे या तो वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को मार डालें या उनके हाथों मर जाएँ। तलवारबाज लोग या दो दास हुआ करते थे या युद्धबन्दी। इनकी जीवन प्रत्याशा बहुत कम हुआ करती थी क्योंकि लड़ाइयाँ अत्यन्त घातक और मृत्यु की दिशा में ले जाने वाली हुआ करती थीं। तलवारबाजी के ये खेल शासकों और समृद्ध कुलीन लोगों को एक मंच उपलब्ध कराते थे जहाँ वे अपनी धन-सम्पदा का प्रदर्शन कर सकें, अपनी सैनिक विजयों का स्मरण कर सकें, महत्वपूर्ण प्रतिष्ठित हस्तियों की यात्राओं को यादगार बना सकें, जन्मदिन के उत्सव मना सकें या राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों से लोगों का ध्यान भटका सकें। तलवारबाजी के अतिरिक्त जिन अन्य लोकप्रिय घटनाओं का आयोजन किया जाता था वे थीं – जंगली और विचित्र जानवरों का शिकार करना, बन्दियों को फाँसी देना, धार्मिक शहीदों को शेर के सामने फेंकना आदि। रोमन साहित्य यह भी स्पष्ट करता है कि सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य में तलवारबाजी के विशिष्ट विद्यालय मौजूद थे जो बेहतरीन तलवारबाजों को प्रशिक्षित करते थे और अच्छी गुणवत्ता के तलवारबाजों को उत्पन्न करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि तलवारबाजों की इस लड़ाई में कुछ रोचक घटनाएँ भी हुआ करती थीं। उदाहरण के लिए, पराजित तलवारबाज को जब दया की भीख माँगनी होती थी तब वह अपने अश्त्र-शस्त्र और कवच का समर्पण करके अपनी उँगली को उठा दिया करता था। अगर यह लड़ाई सम्राट के सामने हो रही होती थी तो सम्राट ही निर्णय लेने वाला व्यक्ति होता था। कभी-कभार भीड़ भी अपनी हस्तमुद्राओं को प्रदर्शित करते हुए चिल्लाया करती थी। यदि भीड़ अपने अँगूठे को ऊपर करके इशारा करती थी तो इसका तात्पर्य यह होता था कि तलवारबाज जा सकता है और अगर अँगूठे को नीचे करके इशारा किया जाता था तो इसका मतलब था कि तलवारबाज को मार दिया जाना चाहिए। असाधारण प्रदर्शन करने वाले तलवारबाजों के लिए सम्मानों और पुरस्कारों का भी प्रावधान हुआ करता था। उन्हें नकद राशि के साथ मुकुट और चाँदी की तश्तरी प्रदान की जाती थी या कभी-कभार उन्हें दासता से मुक्त भी कर दिया जाता था। जब सम्राट ऑनरियस (Honourius) ने तलवारबाजी के विद्यालयों को बन्द करने का आदेश दिया तो 404 ई. तक तलवारबाजी की प्रतियोगिताएँ बन्द कर दी गयीं।

बोध प्रश्न 2

1) रोमन गणराज्य में महिलाओं और दासों की दशा का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) रोमन साम्राज्य में मनोरंजन की सुविधाओं पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.7 रोमन साम्राज्य में ईसाइयत

रोमन धर्म में ठोस नैतिक संघटकों के अभाव के कारण अपनी अस्तित्वरक्षा के लिए रोमवासियों ने मार्गनिर्देशक के रूप में दर्शन का चयन किया। प्रारम्भ में, जब ईसाइयत नयी-नयी ही थी, ईसाइयों का शिकार किसी भी अन्य चीज की तरह ही किया जाता था। देवताओं की सर्वोच्चता की उपेक्षा करने वाले लोगों को सरकार का सबसे बड़ा शत्रु माना जाता था क्योंकि यह कानून के विरुद्ध था। दोषियों की पहचान की जाती थी, उन्हें खोजा जाता था और शेर के सामने फेंक दिया जाता था। यहाँ तक कि इस विषय में बैठकें करने पर भी प्रतिबन्ध था और ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हैं जो बताते हैं कि ईसाइयों को भीड़ द्वारा पीटा जाता था और उन पर हमले किए जाते थे। ईसाइयत के उत्थान ने दूसरी और तीसरी शताब्दी ईस्वी में रोम में अपना स्वर्णिम काल देखा। सम्राट कांस्टैण्टाइन ने 313 ई. में ईसाइयत ग्रहण कर लिया और रोम में कानूनी तरीके से ईसाइयत को लागू कर दिया। अन्य धर्मों के ऊपर उसने ईसाइयत को वरीयता प्रदान की। जितने समय तक वह सम्राट रहा, उतने समय तक किसी भी ईसाई को गिरफ्तार नहीं किया गया और इसका परिणाम यह हुआ कि ईसाइयत रोम में प्रभुत्वशाली और आधिकारिक धर्म बन गया। बाद में, यह एक बाध्यता बन गयी कि यदि किसी व्यक्ति को रोम में रहना है तो उसे ईसाई बनना होगा। कांस्टैण्टाइन को यह श्रेय भी प्राप्त है कि उसने चर्चों और उपासना-स्थलों के निर्माण के लिए भूमि और वित्त उपलब्ध कराया।

16.8 कांस्टैण्टाइन और परवर्ती साम्राज्य

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सम्राट कांस्टैण्टाइन का काल सभी रोमन सम्राटों के कालों की तुलना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। उसका शासनकाल सुधारों के लिए उल्लेखनीय है, खासतौर पर इस सुधार के लिए कि उसने रोमन साम्राज्य में ईसाइयत का आरम्भ किया और साथ ही साथ अपनी सेना में जर्मन लोगों को भर्ती करने की परम्परा को जारी रखा। शासन चलाने के लिए कांस्टैण्टाइन ने अपने स्वयं के दिशानिर्देश स्थापित किए, अपने तीन प्रतिद्वन्दियों के विरुद्ध गृहयुद्ध को जारी रखा और अन्ततः 326 ई. में इन प्रतिद्वन्द्वियों को अपनी शासन व्यवस्था के अन्तर्गत शामिल करने में वह सफल रहा। कांस्टैण्टाइन ने 324 ई. से 330 ई. के बीच यूनानी बाइजेण्टाइन के स्थल पर अपनी नयी राजधानी भी स्थापित की। परवर्ती शासकों को निरन्तर (स्नोबालिंग) कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और इनसे छुटकारा पाने के लिए अनेक प्रयास किए गए। साम्राज्य की सुरक्षा पर खतरों को ध्यान में रखते हुए महान थियोडोसियस ने रोमन साम्राज्य को आधिकारिक रूप से पूर्वी और पश्चिमी नामक दो बराबर भागों में विभाजित कर दिया और प्रत्येक भाग के शासन का प्रभार अलग-अलग शासकों को सौंपा। बर्बरीकरण और उनके बारम्बार हमलों के कारण रोमन सेनाएँ कमजोर पड़ गयीं। इसका परिणाम यह हुआ कि रोमनों ने अपने साम्राज्य के भीतर उनके विरुद्ध लड़ने के लिए गोथ और इसी तरह के अन्य बर्बरजनों को किराये पर लेना शुरू कर दिया। भूभाग पर जर्मन आप्रवासियों द्वारा डाला गया दबाव भी रोमन साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी रहा। राज्य में जर्मन लोग अपने ही नियमों और शर्तों के हिसाब से बसे थे तथा वे रोमन प्रथाओं और परम्पराओं की पूर्ण रूप से उपेक्षा किया करते थे। दरबार में जर्मन नेतागण समान रूप से शक्तिशाली बन गए। पाँचवीं शताब्दी के अन्त तक आते-आते कुछ सम्राट तो जर्मन सैन्य सलाहकारों के हाथ की कठपुतली भर बनकर रह गए। पतन की परवर्ती अवस्था में नगरों ने अपना महत्व खो दिया और कुलीन लोग गाँव-देहात के इलाकों में विशाल हवेलियों में चले गए। पाँचवीं शताब्दी ई. तक धार्मिक विवाद जारी रहे और वास्तविकता यह है कि ईसाई प्राधिकारी रोमन साम्राज्य की पारम्परिक मूर्तिपूजक पद्धति को नष्ट कर देने में सफल रहे। हालाँकि अन्तिम मूर्तिपूजक सम्राट

जूलियन ने ईसाइयत के विरुद्ध सुधार लाने का प्रयास किया था। उसके बाद के सारे सम्राटों ने ईसाइयत का अनुसरण किया और थियोडोसियस ने मूर्तिपूजा पर हिंसक हमले किए और उनके विरुद्ध असहिष्णुतापूर्ण कानूनों का निर्माण किया।

16.9 रोमन साम्राज्य का पतन

जिस सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक ने रोमन साम्राज्य के पतन में अपना योगदान दिया, वह सन् 395 ई. में किया गया साम्राज्य का विभाजन था। यह विभाजन फलदायी परिणामों की आकांक्षा में किया गया था लेकिन जिन दो समान भागों में इसका विभाजन किया गया था, उन दोनों भागों का भाग्य विचलित हो गया। इन दोनों भागों ने सीमा के मुद्दे पर झगड़ा करना शुरू कर दिया। पूर्वी भाग शक्तिशाली बन गया जबकि पश्चिमी भाग दिन-ब-दिन बहुत कमजोर होता चला गया। पूर्वी भाग अपने अस्तित्व को बचाने में सफल रहा क्योंकि यह ऐसी सीमाओं से घिरा हुआ था जिनकी सुरक्षा की जा सकती थी तथा पश्चिमी भाग की तुलना में इस पूर्वी भाग की जनसंख्या भी अधिक थी। इसके अतिरिक्त पूर्वी भाग में करों की दरें भी कम ही थीं तथा ये जर्मन सैन्य दस्तों पर विश्वास भी बहुत कम ही करते थे।

बर्बर जनजातियों ने रोमन साम्राज्य पर हमला करना शुरू किया (तीसरी शताब्दी ईस्वी) तथा चौथी और पाँचवीं शताब्दी ईस्वी तक वे जिन इलाकों पर हमला कर चुके थे, वहाँ बस चुके थे। यहाँ बस चुके ये बर्बर लोग रोमन लोगों के समाज, कानून, जीवन जीने की शैली और आन्तरिक समस्याओं से भलीभाँति वाकिफ़ थे।

इन आन्तरिक कारकों के अतिरिक्त, बाह्य कारकों जैसे उनके प्रमुख शत्रु फारस भी अपनी आन्तरिक समस्याओं से जूझ रहे थे और उनके लिए यह बहुत मुश्किल था कि वे इस पर आक्रमण करें। जर्मन सैन्य सलाहकारों की देखरेख में कामकाज करने वाले पश्चिम के बाल-सम्राटों का दौर 476 ई. तक समाप्त हो गया क्योंकि अन्तिम सम्राट रोमुलस ऑगस्टस को मुख्य जर्मन ओडोसर (Odoacer) द्वारा हटा दिया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मन जनजातियों का आप्रवासन शाही भूभाग की तरफ होने लगा और इसके कारण सम्राट की अनुमति हासिल करके इन जर्मन लोगों ने अपना स्थायी निवास यहाँ बना लिया।

बर्बर जनजातियों ने रोमन साम्राज्य के स्थानीय लोगों के बीच सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं के बारे में नए विचारों को प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया। यह रोमन साम्राज्य के विखण्डन, संकट और पतन के लिए भी उत्तरदायी था। सड़कों, नगरों, व्यापार और वाणिज्य समेत हरेक चीज को लूटकर तोड़फोड़ मचायी गयी और इन चीजों को भाग्य के भरोसे छोड़ दिया गया। समुद्री डाकुओं और डकैतों ने यात्राओं को जोखिमयुक्त बना दिया और ये सारी परिस्थितियाँ पश्चिमी रोम के पतन के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुईं। अन्ततः यह पूर्वी रोम ही था जो बाइजेण्टाइन (बैजन्तिया) साम्राज्य के रूप में अपने अस्तित्व को कायम रख सका और प्राचीन रोमन संस्कृति का संरक्षण करते हुए अगले हजार वर्ष तक शासन कर सका।

बोध प्रश्न 3

1) प्रारम्भ में रोमन साम्राज्य में ईसाइयत के प्रसार की अनुमति क्यों नहीं थी?

.....

.....

.....

.....

2) रोमन साम्राज्य के पतन के कारणों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

16.10 सारांश

वर्तमान इकाई में हमने इटली के संक्षिप्त इतिहास, रोम के उभार और कुछ विशिष्ट घटनाओं पर चर्चा की है। रोमन लोगों की राजनीतिक, सामाजिक और शासन व्यवस्था पर भी चर्चा की गयी है। हमने नगरीय अवस्थापना, मनोरंजन के साधनों, ईसाइयत और इसके प्रसार, परवर्ती साम्राज्य और इसके पतन के बारे में संक्षेप में चर्चा की है। किसी एक ही इकाई में रोमन साम्राज्य का समस्त विवरण उपलब्ध कराना बहुत कठिन है, इसलिए हमने अपनी चर्चा को चुनिंदा विशिष्ट अभिलक्षणों और सीमाचिन्हों तक ही सीमित रखा है।

16.11 शब्दावली

सीनेट : भद्रजनों (Nobles) की परिषद।

अल्पतन्त्र (ओलीगार्की) : समस्त शक्तियों से युक्त लोगों के छोटे-से समूह द्वारा शासित किया जाने वाला राज्य।

फिनीशियन : फिनीशिया (सीरिया के एक हिस्से) के निवासी।

रोम का यूनानीकरण (हेलेनाइजेशन) : यूनानी संस्कृति के सम्मुख आने के कारण रोम की सांस्कृतिक हानि।

16.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 16.2 देखिए।

2) उपभाग 16.3.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 16.4.3 व 16.4.4 देखिए।

2) भाग 16.6 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 16.7 देखिए।

2) भाग 16.9 देखिए।

इकाई 17 व्यापार मार्ग और समुद्री यात्राएँ

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 खोज का युग

17.3 व्यापार मार्ग

- 17.3.1 मसाला मार्ग
  - 17.3.1.1 संस्कृति का प्रसार
  - 17.3.1.2 मसाले बनाम भूमण्डलीकरण
- 17.3.2 रेशम मार्ग

17.4 अन्य व्यापार मार्ग

- 17.4.1 इत्र मार्ग
- 17.4.2 तृणमणि (Amber) (व्यापारिक मनके)
- 17.4.3 चाय मार्ग (चाय-अश्व मार्ग)
- 17.4.4 नमक मार्ग
- 17.4.5 मरुस्थलों के आरपार व्यापार
- 17.4.6 कांस्ययुगीन व्यवसाय (टिन मार्ग)
- 17.4.7 उत्तरपथ और दक्षिणपथ

17.5 बाजार और मेले

17.6 क्रिस्टोफर कोलम्बस – समुद्री यात्राएँ

17.7 वास्कोडिगामा – समुद्री यात्राएँ

17.8 भारत, चीन और व्यापार मार्ग

17.9 सारांश

17.10 शब्दावली

17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि आप :

- विभिन्न व्यापार मार्गों और उनके महत्व को समझ सकें;
- मसाला मार्ग और रेशम मार्ग से सुपरिचित हो सकें;
- अन्य व्यापार मार्गों और उनकी भूमिका की पहचान कर सकें;
- क्रिस्टोफर कोलम्बस और वास्को डी गामा द्वारा की गयी समुद्री यात्राओं के बारे में जान सकें; और
- वर्तमान परिदृश्य में चीन और भारत की मार्ग सम्बन्धी रणनीतियों के बारे में जान सके।

17.1 प्रस्तावना

खोज से सम्बन्धित पिछली इकाई में हम पहले ही खोज, इसके प्रकारों, प्रकृति और अभिलक्षणों की चर्चा कर चुके हैं। विश्व की खोज वाले भाग में गुम हो चुके नगरों और सभ्यताओं के महत्व को आपने समझ लिया है। इस इकाई में हम व्यापार मार्गों की खोज पर चर्चा करेंगे, विशेषतौर पर मसाला मार्ग और रेशम मार्ग तथा अन्य महत्वपूर्ण मार्गों पर। हम वास्को डि गामा और क्रिस्टोफर कोलम्बस द्वारा की गयी समुद्री यात्राओं तथा मार्गों की वर्तमान राजनीति और इसके परिणामों पर भी चर्चा करेंगे।

17.2 खोज का युग

खोज के युग को "अन्वेषण के युग" के रूप में भी जाना जाता है। इसका तात्पर्य पन्द्रहवीं शताब्दी ई. से सत्रहवीं शताब्दी ई. के बीच की उस समयावधि से है जब यूरोपीय (अधिकांशतः) लोगों ने अफ्रीका, अमेरिका, एशिया और ओशनिया (आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी प्रशान्त महासागरीय द्वीपसमूह) में स्थित नए स्थलों और गन्तव्यों आदि का अन्वेषण किया।

ऐसी खोजों के परिणामस्वरूप नए मार्ग, समुद्री व्यापार, वाणिज्यिक व्यवहार, सांस्कृतिक वैचारिक और तकनीकी आदान-प्रदान जैसी चीजें सामने आयीं। इन सबसे ऊपर पुर्तगालियों, डचों, फ्रांसीसियों, स्पेनियों, अंग्रेजों और जापानी लोगों द्वारा किया जाने वाला देशों/क्षेत्रों का उपनिवेशीकरण सामने आया (1511 ई. से 1984 ई. तक)। इन खोजों का सर्वाधिक प्रमुख प्रभाव यह हुआ कि कोलम्बस ने (भारत के स्थान पर) अमेरिका को (संयोगवश) खोज निकाला तथा पुर्तगाली अन्वेषक नाविक वास्को डि गामा ने सन् 1498 ई. में भारत जाने का एक नया मार्ग खोजा, जो आशा अन्तरीप और हिन्द महासागर से होकर गुजरता था। इस खोज ने मसालों के व्यापार के लिए एक नया मार्ग उत्पन्न कर दिया और सम्पूर्ण विश्व के राजनीतिक और सामाजिक ढाँचे पर प्रभाव डाला।

17.3 व्यापार मार्ग

पुरातन काल से ही वस्तुओं का परिवहन उनके उत्पादन स्थलों से उनकी खपत वाले स्थलों तक व्यापार मार्गों के जरिये किया जाता था। मसालों और नमक जैसी दुर्लभ वस्तुएँ केवल कुछ क्षेत्रों में ही उपलब्ध थीं। ये दुर्लभ वस्तुएँ व्यापार मार्गों के विकास के लिए सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति थीं लेकिन एक बार जब ये मार्ग विकसित और स्थापित हो गए तो ये संस्कृति, धर्म, परम्परा, भाषा, ज्ञान, विचार और कभी-कभार तो विषाणुओं और जीवाणुओं के आदान-प्रदान के भी माध्यम बने।

मध्यकाल में वस्तुओं का परिवहन स्थल मार्गों और जल मार्गों के जरिये किया जाता था। व्यापार मार्गों के जरिये व्यवसाय का प्रसार करने में अरब व्यापारियों ने प्रमुख भूमिका निभायी। केन्द्रीय एशिया में व्यापार मुख्यतः स्थल मार्गों के जरिये ही होता था। भूमध्यसागरीय क्षेत्र ईरान, भारत और चीन से काफिला मार्गों के जरिये सम्बद्ध था। मुस्लिम व्यापारियों ने गुजरात, सिन्ध और सैमूर (मुम्बई के निकट) में व्यापारिक चौकियाँ स्थापित की थीं।

उस समय के प्रमुख बन्दरगाह थे – जोर, जिद्दा (लाल सागर के बन्दरगाह), उबुल्लाह (फारस की खाड़ी), सिराफ, बसरा, यमन, मस्कट और ओमान आदि।

मानव सभ्यता के इतिहास में रेशम मार्ग और मसाला मार्ग दो सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यापार मार्ग हैं।

17.3.1 मसाला मार्ग

जापान के पश्चिमी तट से लेकर इण्डोनेशियाई द्वीपसमूह, भारत (के चारों ओर), मध्य एशिया और भूमध्यसागरीय क्षेत्र (के आरपार) से यूरोप तक के समुद्री मार्ग को मसाला मार्ग कहा जाता है। इस मसाला मार्ग का उल्लेख कुछ लेखकों ने "समुद्री रेशम मार्ग" के नाम से भी किया है। यह पूरब को पश्चिम से जोड़ने वाला समुद्री मार्ग था। व्यापार (व्यावसायिक पर्यटन) और साहस (पर्यटन का भाग) के लिए उत्साही और बहादुर नाविकों और अन्वेषकों द्वारा इन खतरनाक समुद्री मार्गों के जरिये यात्राएँ की जाती थीं। मसाला मार्ग के विकास का मुख्य कारण यह था कि उन दिनों भारत और दक्षिण एशियाई देशों के मसालों की यूरोपीय देशों में बहुत माँग थी। जिन वस्तुओं का व्यापार किया जाता था, वे थीं – दालचीनी, तेजपत्ता (कैसिया), इलायची, अदरक, काली मिर्च, हल्दी, अफीम, हाथी दाँत, रेशम, कपड़े, चीनी मिट्टी, धातुएँ और मूल्यवान तथा अर्द्धमूल्यवान रत्न। ऐसी वस्तुओं के व्यापार से उन व्यापारियों को बहुत भारी मुनाफा होता था जो खतरनाक समुद्री मार्गों के जरिये समुद्री यात्राएँ करने का जोखिम उठाने को तैयार रहते थे। इस मार्ग के माध्यम से सिर्फ वस्तुओं का ही आदान-प्रदान नहीं होता था बल्कि लोगों, विचारों, दर्शन, जीवनशैली, भोजन, आदतों, कपड़ों, ज्ञान, तकनीक, धर्म, विश्वासों, संस्कृति, विशेषज्ञता तथा वैज्ञानिक और कलात्मक कौशलों का भी आदान-प्रदान होता था। मसाला शब्द के लिए spice शब्द का प्रयोग होता है जो लैटिन शब्द "Species" से निकला है और जिसका अर्थ है "विशेष मूल्य की वस्तु"। उन दिनों में मसाले सर्वाधिक मूल्यवान हुआ करते थे, जिसके कारण निम्नलिखित थे :

- भोजन को स्वादिष्ट बनाना (पकाना)
- एक परिरक्षक के रूप में
- चिकित्सकीय और आध्यात्मिक मूल्य
- आनुष्ठानिक मूल्य/महत्व
- धार्मिक समारोहों में उपयोगी
- हवा को शुद्ध करने वाला (सुगन्धित करने वाला)
- प्रतिष्ठा और राजसीपन
- मसालों का आकार छोटा होता था, ये शुष्क होते थे और इनको लाना-ले जाना आसान था।

मसाले इतने अधिक मूल्यवान हुआ करते थे कि अरब व्यापारियों ने मसालों की खेती और उनके एकत्रण से जुड़ी अनेक विचित्र और अविश्वसनीय कहानियाँ गढ़ ली थीं और उन कहानियों का प्रचार किया करते थे। मसाले विशाल गिद्धों, अचम्भित करने वाले पक्षियों, अजगरों और साँपों से सम्बद्ध थे। लाभ और व्यापार के रहस्य की सुरक्षा के लिए तथा मसालों के स्रोतों को छिपाने के लिए ऐसे मिथक और आख्यान गढ़े गए थे। 3000 ई. पू. में शुरू होने वाले मसालों के व्यापार के प्रमाण को मुजरिस (केरल, भारत) बन्दरगाह पर खोजा जा सकता है, जिसे "मसालों की भूमि" या "भारत का मसाला बागान" कहा जाता था। केरल से जुड़े मार्ग की पहचान करना इस सम्बन्ध में इतना अधिक महत्वपूर्ण था कि इसके लिए वास्को डि गामा, क्रिस्टोफर कोलम्बस और अन्य अन्वेषकों ने अपना सारा जीवन खर्च कर दिया।

भारत और श्रीलंका को जाने वाले समुद्री मार्गों पर पहले भारतीयों और इथियोपियाई लोगों का नियन्त्रण था तथा बाद में इस्लाम के उभार के साथ अरब व्यापारियों ने समुद्री मार्गों पर

अपना प्रभुत्व स्थापित करना शुरू कर दिया। यूरोपीय लोगों द्वारा "नए स्थलों और मार्गों की खोज" के उत्साह के कारण मध्यकाल में व्यापार का प्रतिमान परिवर्तित हो गया। खोज के युग ने मसालों के व्यापार मार्ग पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए पुर्तगालियों, डचों, अंग्रेजों और स्पेनी लोगों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं।

17.3.1.1 संस्कृति का प्रसार

मसालों का व्यापार मलेशिया और इण्डोनेशिया (दक्षिण पूर्व एशिया) में भारतीय भोजन के प्रसार के लिए उत्तरदायी था जहाँ मसालों और करी-पत्तों का मिश्रण बहुत लोकप्रिय हो गया था। यूरोपीय लोगों ने भारतीयों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित किया, भोजन पकाने और सिरका बनाने की कला को लोकप्रिय बनाया तथा भारतीय भोजन और स्वाद को अपना लिया। मसालों का व्यापार दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी था। विशेषतौर पर बौद्ध धर्म का प्रसार समुद्री व्यापार के कारण विकसित कला, साक्षरता और सिक्का-ढलाई के साथ हुआ। इस्लाम धर्म और व्यापार के प्रसार में मुस्लिम व्यापारियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सेण्ट फ्रांसिस जैवियर (ईसाई मिशनरियों) ने पूरब में ईसाइयत का प्रसार किया। मसालों के व्यापार में अदन से अरब लोग, फुजियान प्रान्त से चीनी लोग, दक्षिण भारतीय चेट्टी लोग, गुजराती बनिये लोग और सीरियाई ईसाई लोग जैसे व्यापारी शामिल थे। दो अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों के मेलजोल के कारण संस्कृति, परम्परा, भाषा, जीवनशैली और परिधानों आदि जैसी सभी चीजों पर प्रभाव पड़ा।

दक्षिण एशियाई भोजन मध्य-पूर्व, चीन, भारतीय, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, पॉलीनेशियाई और अन्य यूरोपीय प्रभावों से युक्त भोजनों का मिश्रित रूप है। नारियल दूध का प्रयोग इण्डोनेशियाई और मलेशियाई भोजनों में समान रूप से किया जाता है। मछली के व्यंजनों ने वियतनाम और थाइलैण्ड के भोजनों को गहराईपूर्वक प्रभावित किया है।

कुछ अभिलेख बताते हैं कि मसालों का व्यापार मध्य पूर्व में 4000 साल पहले शुरू हुआ था। इस पर अरब व्यापारियों का नियन्त्रण था जो मसालों के व्यापार और इससे जुड़े लाभों की रक्षा मात्र के लिए मिथकीय और विचित्र कहानियाँ प्रसारित किया करते थे। यूरोपीय लोगों से इसकी बहुत ऊँची कीमत वसूल की जाती थी क्योंकि मसालों को दुर्लभ और साथ ही प्राप्त करने में कठिन माना जाता था। प्रारम्भ में मसालों को स्थल मार्गों (रेशम मार्ग) द्वारा ऊँटों के जरिये भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, इराक और तुर्की होते हुए ले जाया जाता था। यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, भूमध्यसागरीय क्षेत्र और एशिया रेशम मार्ग के जरिये आपस में जुड़े हुए थे। रोम, अरब, फारस (ईरान), मिस्र, भारत और चीन की महान सभ्यताओं के विकास में रेशम मार्ग के जरिये किया जाने वाला व्यापार एक महत्वपूर्ण कारक था। सन् 1453 में ऑटोमन साम्राज्य (मुसलमानों) के हाथों कांस्टैण्टीनोपल (कुस्तुनतुनिया, इस्तानबुल - तुर्की) के पतन के साथ रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया। ऑटोमन साम्राज्य के उत्थान के साथ एशिया और यूरोप के बीच की स्थलीय सम्बद्धता कट गयी। उस समय के व्यापार मार्ग पर ऑटोमन साम्राज्य का नियन्त्रण हुआ करता था और पश्चिम की ओर जाने वाली वस्तुओं पर इस साम्राज्य द्वारा भारी कर लगाए जाते थे। ऑटोमन साम्राज्य की गतिविधियों ने पश्चिमी यूरोप को खोज और अन्वेषण का युग प्रारम्भ करने के लिए बाध्य कर दिया ताकि वे एशिया जाने के लिए एक वैकल्पिक मार्ग का पता लगा सकें। मसालों के अत्यधिक लाभप्रद व्यापार के लिए पश्चिमी यूरोपीय लोग ऑटोमन साम्राज्य पर निर्भर रहने को तैयार नहीं थे। मसालों का व्यापार विश्व का सबसे बड़ा उद्योग था जिसने अनेक साम्राज्यों को स्थापित और नष्ट किया। इस व्यापार ने यूरोपीय लोगों को तुलनात्मक रूप से अत्यधिक खतरनाक समुद्री यात्राएँ करके दुनिया का मानचित्र रचने की प्रेरणा दी। इसने पाकशाला सम्बन्धी दुनिया को भी हमेशा के लिए बदल दिया।

17.3.1.2 मसाले बनाम भूमण्डलीकरण

मसालों का मूल्य और उसकी तलाश भूमण्डलीकरण की प्रारम्भिक संचालक शक्तियाँ थीं। मसाले मध्यकाल में भूमण्डलीय आर्थिक संजाल के सृजन के लिए उत्तरदायी थे। मसाले ऐसी भूमण्डलीय वस्तु थे जिसके साथ उपभोक्ताओं और उत्पादकों के बीच सम्बन्धों की जटिल श्रृंखला मौजूद हुआ करती थी। मिथकों, कहानियों, सम्बन्धित खतरों और रहस्यमय स्रोतों के कारण उपभोक्ता मसालों की खेती की प्रक्रिया और विधियों से अनभिज्ञ थे। मसालों की आपूर्ति सीमित और कीमत बहुत ऊँची हुआ करती थी। मसालों के व्यापार पर नियन्त्रण की आकांक्षा वह प्रमुख कारक थी जिसके चलते औपनिवेशिक साम्राज्यों ने एक ही शासन के अन्तर्गत सैन्य, राजनीतिक और वाणिज्यिक संजाल का निर्माण किया।

मसालों की वैश्विक माँग ने क्रिस्टोफर कोलम्बस और वास्को डि गामा को खतरनाक समुद्री यात्राएँ शुरू करने के लिए प्रेरित किया। अन्ततः इन यात्राओं का परिणाम यूरोपीय उपनिवेशवाद के रूप में सामने आया। पाक कला से जुड़ी जितनी भी प्राचीन पुस्तकें शेष बची हैं, उन सभी में मसालों के अलग-अलग तरीके के उपयोगों पर जोर दिया गया है। मसालों का उपयोग व्यापक रूप से स्वाद और सुगन्ध बढ़ाने, स्वास्थ्य, रंग, चिकित्सकीय लाभों, खुशबू (वर्तमान एरोमाथेरेपी की तरह), सम्भ्रान्तवर्गीय ठाठ-बाट और परिरक्षण के लिए किया जाता था। मसाला पैदा करने वाले भारत जैसे क्षेत्र यूरोपीय लोगों के लिए बहुत अनोखे और मनोहर होते थे। यूरोपीय लोगों के भौगोलिक मानचित्रों में भारत को बाइबिल के गार्डेन ऑफ ईडन (धरती का स्वर्ग) के आसपास का स्थान प्रदान किया गया है। प्रारम्भिक यूरोपीय लोग सोचते थे कि भारतीय काली मिर्च के पेड़ों पर फलों की रक्षा के लिए साँप मौजूद रहते हैं और जो भी इन फलों को बटोरने का साहस करता है, उसे ये साँप डस लेते हैं।

यूरोप में मसालों की उपलब्धता और कीमत वैश्विक कारकों से प्रभावित होती थी; जैसे – पड़ोसी शक्तियों (मुसलमानों और ईसाइयों) के साथ भारत के सम्बन्ध तथा क्षेत्र में मौसम की दशा (मौसम और मानसून)। मसालों के व्यापार पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए ही पुर्तगाली, डच, अंग्रेज आदि एक-दूसरे से लड़ते रहते थे। यहाँ तक कि सत्रहवीं शताब्दी में भी डच और अंग्रेज लोग मसालों के क्षेत्र पर नियन्त्रण के लिए लड़ रहे थे और एक समझौते के रूप में अंग्रेजों द्वारा न्यूयॉर्क या डच न्यू एम्सटर्डम का जायफल उगाने वाले एक क्षेत्र (मोलक्कन द्वीपसमूह) के बदले विनिमय किया गया था। यह एक तथ्य है कि मसाले ही वृहदस्तरीय वैश्विक आर्थिक संजाल और विशाल साम्राज्यों के प्रमुख कारण थे। मसालों ने यूरोपीय लोगों को पूरी दुनिया में विस्तार करने और उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित किया था।

17.3.2 रेशम मार्ग

यह प्राचीन काल के सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यापार मार्गों में से एक था जो चीन को रोम से जोड़ता था। रेशम व्यापार मार्ग के जरिये रेशम का व्यापार किया जाता था। रेशम चीन से जाता था और रोम से बदले में सोना, चाँदी और ऊन प्राप्त होता था। यह मार्ग चीन में जियान से शुरू होता था और चीन की दीवार के समानान्तर चलते हुए पामीर पर्वतों (अफगानिस्तान) और लीवैण्ट (भूमध्यसागर का पूर्वी क्षेत्र) तक जाता था। लीवैण्ट में भूमध्यसागरीय बन्दरगाहों के लिए वस्तुएँ लादी जाती थीं। इस मार्ग से सिर्फ वस्तुओं का ही परिवहन नहीं किया गया बल्कि यह मार्ग ज्ञान, तकनीक, धर्म और कलाओं के लिए भी एक प्रमुख माध्यम बना। मार्ग के बीच में पड़ने वाले समरकन्द (उज्बेकिस्तान) जैसे कुछ केन्द्र बौद्धिक मिश्रण से युक्त महत्वपूर्ण स्थल बन गए। चीन से रोम तक की दूरी लगभग

चार हजार मील थी इसलिए किसी एक व्यापारी के लिए यह सम्भव नहीं था कि यह पूरी दूरी वह स्वयं तय कर सके। कोई व्यापारी रेशम व्यापार मार्ग के किसी विशिष्ट हिस्से में माल के परिवहन के लिए विशेषज्ञता रखता था जो माल को आगे की यात्रा के लिए दूसरे किसी व्यापारी को सौंप दिया करता था। रोमन साम्राज्य के ढहने के कारण चौथी शताब्दी ई. में रेशम व्यापार मार्ग असुरक्षित हो गया। तेरहवीं शताब्दी में मंगोलों ने इस मार्ग को पुनर्जीवित किया। रेशम मार्ग के जरिये ही अन्वेषक मार्को पोलो ने चीन की यात्रा की थी और ऐसा करने वाला वह यूरोप का पहला व्यक्ति बना था। कुछ अनुसन्धानकर्ताओं का कहना है कि प्लेग पैदा करने वाले जीवाणुओं का प्रसार भी रेशम व्यापार मार्ग के जरिये ही हुआ था।

ऐतिहासिक दस्तावेजों के अनुसार रेशम कीट पालन 4000-3000 ई. पू. में ही प्रारम्भ हो गया था। दक्षिणी चीन रेशम कीट पालन के प्राचीन और सर्वाधिक प्रसिद्ध केन्द्रों में से एक था। प्रारम्भिक दिनों में रेशम इतना अधिक मूल्यवान होता था कि यह मुद्रा का कार्य करता था। पाँचवीं शताब्दी तक रेशम निर्माण की प्रक्रिया की गुप्त रूप से चीनियों द्वारा रक्षा की जाती थी। रेशम निर्माण चीन की अनेक ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं की रीढ़ हुआ करता था। हान राजवंश के काल में रेशम निर्माण एक प्रमुख उद्योग तथा विशेषज्ञतायुक्त प्रमुख क्षेत्र बन गया था। बाद में भारत और जापान भी रेशम उत्पादक क्षेत्रों के प्रमुख केन्द्र बन गए।

मध्य एशिया (रेशम मार्ग) के आरपार जाने वाले काफिला मार्ग से रेशम का व्यापार होता था। यह चीन से सीरिया और उसके बाद रोम तक जाता था। भारत से कच्चा रेशम और कपड़े फारस जाते थे। फारस पूरब और पश्चिम के बीच के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में से एक बन गया था। रोम, यूनान, मिस्र और सीरिया में रेशम की बुनाई और रंगाई का विकास एक कला के रूप में किया गया। कहा जाता कि चीन में रहने वाले फारस के दो संन्यासियों ने बाँस के डण्डे के भीतर रेशम-कीटों को छुपाकर उनकी तस्करी की थी और उसे इस्तानबुल (कुस्तुनतुनिया) तक ले गए थे, जिसके कारण रेशम कीट पालन का यूरोपीय व्यवसाय प्रारम्भ हुआ।

रेशम मार्ग के जरिये अनेक वस्तुओं का व्यापार किया गया; जैसे – रेशम, साटन (Satin) और अन्य तरीके के उत्कृष्ट धागे, दास, मसाले, औषधियाँ, इत्र, कस्तूरी, चीनी मिट्टी और काँच के सामान तथा आभूषण आदि। यह मार्ग प्राचीन चीन, भारत, फारस, एशिया माइनर और भूमध्यसागरीय देशों से होकर गुजरता था। इसने घुमक्कड़ों, शासकों, योद्धाओं, मिशनरियों, तीर्थयात्रियों, दुकानदारों और व्यापारियों के बीच तकनीकी, सांस्कृतिक और वाणिज्यिक विनिमय के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं।

रेशम मार्ग पर व्यापारिक गतिविधि चीन, रोम, अरब, फारस, मिस्र और भारत जैसी महान सभ्यताओं के विकास में एक उल्लेखनीय कारक थी।

बोध प्रश्न 1

1) व्यापार मार्गों से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मसाले और रेशम के व्यापार मार्ग के बारे में विस्तार से बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) भूमण्डलीकरण और सांस्कृतिक प्रसार में मसालों की क्या भूमिका है?

.....

.....

.....

.....

.....

17.4 अन्य व्यापार मार्ग

"खोज के युग" (अन्वेषण) ने अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका और एशिया के बीच महत्वपूर्ण वाणिज्यिक सम्बन्ध उत्पन्न किए। आन्तरिक व्यापार का संचालन बाल्टिक, अटलांटिक, भूमध्यसागर, अरब सागर और हिन्द महासागर के जरिये होता था। एक अनुसन्धान के जरिये भूमध्यसागर को पार करने के लिए चार व्यापार मार्गों की सूची बनायी गयी है। इनमें से दो व्यापार मार्ग हिन्द महासागर से होकर गुजरते थे और दो मार्ग स्थलमार्ग थे। एक व्यापार मार्ग का प्रारम्भ चीन से होता था और दक्षिणी साइबेरिया के स्टेपीज (घास के मैदानों) से होते हुए इस मार्ग का समापन काला सागर पर होता था। दूसरा व्यापार मार्ग चीन से शुरू होता था और तुर्किस्तान के मरुस्थल से होते हुए ईरान तक जाता था तथा फारस की खाड़ी को जोड़ता था। इस व्यापार मार्ग में समुद्री और स्थलीय मार्ग अंतर्संबंधित थे। अन्य मार्ग भी थे जो हिन्द महासागर से होकर गुजरते थे; जैसे – भारत से मलक्का और उसके बाद ईस्ट इण्डीज जाने वाले मार्ग, जो फारस की खाड़ी पर आपस में मिल जाते थे। इसके अतिरिक्त भी बहुत सारे व्यापार मार्गों का अस्तित्व था जो इंग्लैण्ड, फ्रांस, ट्राय (Troyes) और कॉम्पियन (Compiegne) आदि को आपस में जोड़ते थे। नहरों और नदियों के जाल के कारण हालैण्ड व्यापार के एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में उभरा।

17.4.1 इत्र मार्ग

रोम, यूनान और मिस्र के लोग सुगन्धित रेजिन (फ्रैंकइनसेंस) और लोहबान के बहुत शौकीन थे जो यमन और ओमान (अरब प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग) में पाया जाता था। सुगन्ध के लिए इस सुगन्धित रेजिन और लोहबान को जलाया जाता था तथा इत्र के रूप में भी इनका उपयोग किया जाता था। अन्तिम संस्कार के समय भी शव-लेपन के लिए इन चीजों का उपयोग किया जाता था। इत्र मार्ग का विकास अरब लोगों द्वारा किया गया था जो ऊँटों के जरिये मूल्यवान इत्र का परिवहन भूमध्यसागर तक किया करते थे। पेड़ों से उनका रस निकालकर और फिर उसे धूप में सुखाकर इत्र को तैयार किया जाता था। यहाँ तक कि प्लिनी, दि एल्डर (रोमन इतिहासकार) ने भी अपने लेखन में सुगन्धित रेजिन और लोहबान के व्यापार का उल्लेख किया है। नौकाओं की डिजाइन में उन्नति और समुद्री मार्गों के विकास के साथ प्रथम शताब्दी ई. तक यह प्राचीन स्थलीय मार्ग निरर्थक हो गया।

17.4.2 तृणमणि (Amber) मार्ग (व्यापार वाले मनके)

तृणमणि मनकों को बाल्टिक क्षेत्र से शेष यूरोप तक ले जाने के लिए रोमन लोगों ने तृणमणि मार्ग का विकास किया था। तृणमणि मनकों का उपयोग सजावट की वस्तु के रूप में किया जाता था और चिकित्सकीय उद्देश्यों के लिए भी ये मूल्यवान थे। बाल्टिक सागर उत्तम गुणवत्ता वाले तृणमणि मनकों के लिए प्रसिद्ध है जिनका निर्माण लाखों वर्ष पूर्व आच्छादित जंगलों के डूब जाने से हुआ था। प्राचीन तृणमणि मार्ग के अवशेष पोलैण्ड में देखे जा सकते हैं, जहाँ पर एक मार्ग का नाम ही "तृणमणि राजमार्ग (Amber Highway)" है।

17.4.3 चाय मार्ग (चाय-अश्व मार्ग)

चाय मार्ग का विकास चीन की चाय और तिब्बती यौद्धिक अश्वों के परिवहन के लिए किया गया था। यह मार्ग चीन के हेंगडुआन पर्वतों से शुरू होकर तिब्बत होते हुए भारत तक विस्तृत था। दुर्गम क्षेत्रों और बहुत सारी नदियों के भूभाग के कारण यह मार्ग सर्वाधिक खतरनाक मार्ग था। सांग (Song) राजवंश (960-1279 ई.) के काल में अधिकतम व्यापार इसी खतरनाक मार्ग के जरिये किया जाता था। समुद्री मार्गों में वृद्धि के साथ-साथ चाय मार्ग का महत्व हाशिये पर चला गया।

17.4.4 नमक मार्ग

पुरातन काल से ही नमक का प्रयोग परिरक्षक और रोगाणुरोधक के रूप में तथा भोजन में स्वाद बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है। प्राचीन काल में यह एक दुर्लभ खनिज पदार्थ था इसलिए जो स्थान नमक के मामले में समृद्ध थे वे महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र बन गए; जैसे– सैलेरिया होते हुए रोमन केन्द्र। यह मार्ग ओस्टिया (रोम के पास) से लेकर इटली होते हुए एड्रियाटिक तट तक जाता था। नमक के महत्व को "सैलरी (Salary)" शब्द से पहचाना जा सकता है। सैलरी शब्द का प्रयोग रोमन सैनिकों के वेतन के लिए किया जाता था। एक अन्य महत्वपूर्ण नमक मार्ग लूनबर्ग (उत्तरी जर्मनी) से ल्यूबेक (जर्मन तट) तक विस्तृत था। उत्तरी जर्मनी का क्षेत्र उत्तरी यूरोप के लिए नमक के प्रमुख स्रोतों में से एक था।

17.4.5 मरुस्थलों के आरपार व्यापार (ट्रांस-सहारा व्यापार मार्ग)

उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका के बीच सहारा मरुस्थल में अनेक आड़े-तिरछे व्यापारिक सम्पर्क-मार्ग मौजूद थे। इस मार्ग पर स्वर्ण, दासों, नमक, कपड़ों, शुतुरमुर्ग के पंखों, यूरोपीय बन्दूकों आदि के परिवहन के लिए ऊँटों का प्रयोग किया जाता था। इस्लाम, अरबी ज्ञान, शिक्षा और भाषा का प्रसार इस मार्ग के जरिये घटित हुआ था। इस मार्ग ने राज्य-निर्माण और मौद्रिक प्रणाली के विकास को भी प्रोत्साहित किया। यूरोपीय लोगों द्वारा अटलांटिक के आरपार किए जाने वाले व्यापार के उद्‌भव के साथ यह आन्तरिक मार्ग हाशिये पर चला गया क्योंकि वस्तुएँ और सम्पदा आन्तरिक भूस्थलों से तटीय क्षेत्रों की दिशा में जाने लगीं।

17.4.6 कांस्ययुगीन व्यवसाय (टिन मार्ग)

कांसे जैसी मजबूत और उपयोगी धातु को बनाने के लिए टिन को ताँबे के साथ गलाकर मिलाना पड़ता है। इस तकनीक ने टिन की माँग पैदा कर दी जो बहुत सारी जगहों पर नहीं पाया जाता था। एक टिन मार्ग कॉर्नवाल की टिन खानों (ब्रिटेन के दक्षिण-पश्चिम में) से लेकर फ्रांस होते हुए यूनान और इसके भी आगे तक जाता था (ईसा की पहली सहस्राब्दी)। लिखित अभिलेख तो उपलब्ध नहीं हैं लेकिन व्यापारिक चौकियों के रूप में अनेक पहाड़ी किलों की अवस्थिति इस तरीके के व्यापार मार्ग के अस्तित्व को स्पष्ट करती

है। पुरातात्विक अभिलेख भी उत्तरी यूरोप और भूमध्यसागर के बीच टिन मार्ग के अस्तित्व की पुष्टि करते हैं।

17.4.7 उत्तरपथ और दक्षिणपथ

भारतीय उपमहाद्वीप के दो प्रमुख व्यापार मार्ग उत्तरपथ और दक्षिणपथ थे। उत्तरपथ उत्तरी और उत्तरी-पश्चिमी तथा दक्षिणपथ मध्य भारत और दक्षिणी प्रायद्वीप में अवस्थित था। उत्तरपथ को "उत्तरी उच्च पथ" भी कहा जाता है। इस व्यापार मार्ग में समस्त उत्तरी-पश्चिमी भारत, उत्तरी भारत, पूर्वी भारत तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य तक का क्षेत्र शामिल था। यह मार्ग बंगाल, बिहार, गोरखपुर, बिजनौर, सहारनपुर, जालन्धर, लाहौर और तक्षशिला आदि को जोड़ता था। इसका दक्षिणी हिस्सा लाहौर, दिल्ली, हस्तिनापुर, वाराणसी, इलाहाबाद, पाटलिपुत्र और राजगीर आदि को जोड़ता था। मणिभद्र यक्ष उत्तरापथ के व्यापारियों के अधिष्ठायी या पीठासीन देवता थे। यह व्यापार मार्ग अपने उत्तम नस्ल के घोड़ों और घोड़ों के व्यापारियों के लिए प्रसिद्ध था।

दक्षिणापथ को प्रायः "दक्षिणी उच्च पथ" कहा जाता है। यह मार्ग वाराणसी, उज्जैन, नर्मदा घाटी और प्रतिष्ठान (पैठन – महाराष्ट्र) को जोड़ता था और इसके पश्चात भारत के पश्चिमी तट से होते हुए दक्षिण दिशा में चला जाता था। मणिमेखलै दक्षिणापथ के व्यापारियों के अधिष्ठायी या पीठासीन देवता थे।

लाजवर्द मणि, चाँदी, अर्द्धमूल्यवान रत्न, समुद्री सीप, स्वर्ण, सीसा, ताँबा, लोहा, चन्दन की लकड़ी, घोंघों के कवच, हीरे, माणिक्य, मोती, कपड़े और वर्षारोधी वस्त्र व्यापार की प्रमुख वस्तुएँ थीं।

इन व्यापार मार्गों का उपयोग व्यापारियों, पर्यटकों, तीर्थयात्रियों, विद्यार्थियों, अभिनेताओं, कलाबाज नटों, राजाओं, सेना, अश्व-व्यापारियों, बिसातियों, संन्यासियों आदि द्वारा अपने-अपने उद्देश्यों के लिए किया जाता था।

ये व्यापार मार्ग समुद्री बन्दरगाहों से जुड़े हुए थे; उदाहरण के लिए, उत्तरापथ ओडिशा के तटों, सिन्ध और राजस्थान से जुड़ा हुआ था। दक्षिणापथ वीरमपट्टिनम (अरिकामेडु) से प्रतिष्ठान के जरिये जुड़ा हुआ था।

17.5 बाजार और मेले

व्यापार मार्ग बाजारों और मेलों की स्थापना के लिए जिम्मेदार थे। यह कहा जाता है कि सोलहवीं शताब्दी में भारत में लगभग 3200 कस्बे मौजूद थे। सभी कस्बों में बाजार होता था और कुछ कस्बे तो ऐसे थे, जहाँ पर एक से अधिक बाजार हुआ करते थे। एक व्यापारी का प्रतिवेदन यह स्पष्ट करता है कि जौनपुर (पूर्वी उत्तर प्रदेश) की बावन मिसालों में मण्डी और बाजार हुआ करते थे। डिंडिगुल, कैम्बे, भड़ौच, मछलीपट्टनम, बीजापुर, दिल्ली, ढाका, पटना, मुल्तान, लाहौर, आगरा और सूरत आदि अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के केन्द्र थे। मध्यकाल में आगरा लन्दन से बड़ा था। भारत का कैम्ब्रिज आर्थिक इतिहास, खंड-1 भारत में वस्तुओं के विनिमय को दर्ज करता है। इसके अनुसार, चौदहवीं शताब्दी के दौरान दिल्ली को निम्नलिखित चीजें निम्नलिखित स्थलों से प्राप्त होती थीं :

खुरासान से घोड़े, मुल्तान होते हुए

देश के विभिन्न भागों से अनाज

कोल (अलीगढ़) और मेरठ से मदिरा

धार (मालवा) से पान

अवध (अयोध्या) से कपड़े

देवगिरि से मलमल

बंगाल से धारीदार वस्त्र

तबरेज (ईरान) से जरी वस्त्र आदि।

अरब क्षेत्र में लगभग सभी कस्बों में बड़े-बड़े बाजार मौजूद थे; जैसे – बसरा, बगदाद, मक्का, हार्मुज, अदन, इस्तानबुल और जेद्दा आदि में। चीन के बाजार केन्द्र भारत, अफ्रीका और मध्य एशिया से व्यापारियों को आकृष्ट किया करते थे। काहिरा में तीस से भी अधिक बाजार थे। मेक्सिको, ब्राजील और अर्जेण्टाइना में भी व्यापारिक गतिविधियों के लिए बड़े-बड़े बाजार उपलब्ध थे। अधिकांश मामलों में ये बाजार या तो धार्मिक या सांस्कारिक उत्सवों से जुड़े हुए थे। ये मेले वर्ष के किसी विशिष्ट मौसम या समय पर आयोजित किए जाते थे। कुछ मेलों को किसी विशिष्ट वस्तु के सम्बन्ध में विशेषज्ञता प्राप्त थी और वे व्यापार के केन्द्र बन गए थे।

बोध प्रश्न 2

1) इत्र मार्ग और ट्रांस-सहारा व्यापार मार्ग क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) उत्तरपथ और दक्षिणपथ व्यापार मार्गों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) व्यापार में बाजारों और मेलों की क्या भूमिका है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

17.6 क्रिस्टोफर कोलम्बस – समुद्री यात्राएँ

क्रिस्टोफर कोलम्बस का जन्म इटली के जेनोआ में सन् 1451 ई. में हुआ था। उसके पिता (डोमिनिको कोलम्बो) ऊन के एक व्यापारी थे। अपनी औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात कोलम्बस ने व्यापारिक यात्राओं के लिए नौकायन प्रारम्भ कर दिया। सन् 1476 ई. में वह पुर्तगाल चला गया और वहाँ अपने भाई के साथ मिलकर उसने मानचित्र बनाने का व्यवसाय शुरू किया। 1479 में क्रिस्टोफर कोलम्बस ने फेलिपा पेलेस्त्रेलो मोनिज नामक एक कुलीन महिला से विवाह किया। मोनिज उस अन्वेषक बार्तोलोम्यू पेरेस्त्रेलो की पुत्री थी, जो मडेरा द्वीपसमूह की खोज में शामिल रहा था। क्रिस्टोफर की पत्नी ने अटलांटिक महासागर में चलने वाली धाराओं और हवाओं का आरेख उपलब्ध कराया। इण्डीज को जाने वाले नए व्यापार मार्ग का पता लगाने के लिए कोलम्बस समुद्री यात्रा शुरू करना चाहता था और इसके लिए उसने पुर्तगाल के सम्राट का संरक्षण प्राप्त करने की कोशिश की, लेकिन उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया।

सन् 1485 में, अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद वह स्पेन चला गया और वहाँ मानचित्रों और आरेखों की दुकान खोल ली।

1450 के दशक में उत्तरी अफ्रीका पर तुर्की साम्राज्य का नियन्त्रण था जिन्होंने मसालों तक यूरोपीय लोगों की पहुँच को रोक रखा था। अनेक देशों ने वैकल्पिक मार्ग का पता लगाना शुरू किया ताकि समुद्री रास्ते से मसालों को लाया जा सके। वास्तव में, पुर्तगाल ने अफ्रीका के दक्षिणी बिन्दु (आशा अन्तरीप) का चक्कर लगाने वाला एक मार्ग खोजने के लिए बहुत कड़ा प्रयास किया। उस समय पृथ्वी का वास्तविक आकार ज्ञात और सिद्ध नहीं था लेकिन कोलम्बस ने यह तर्क दिया कि पृथ्वी के आकार को इसके वास्तविक आकार की तुलना में कुछ ज्यादा ही बड़ा माना जा रहा है। पृथ्वी के आकार की जो गणना कोलम्बस ने की थी, उस गणना के अनुसार विश्व पहले किए गए आकलनों की तुलना में 66 प्रतिशत छोटा था। मसालों के लिए नया मार्ग पता लगाने के लिए उसने पहले अपनी योजना को 1483 में पुर्तगाल के सामने रखा, जिसे खारिज कर दिया गया। सन् 1487 ई. में कोलम्बस ने अपनी योजना को इंग्लैण्ड के सम्राट हेनरी सप्तम और फ्रांस के सम्राट चार्ल्स अष्टम के सामने प्रस्तुत किया लेकिन कोलम्बस इन्हें सहमत नहीं कर सका। सन् 1486 और 1491 में अपनी समुद्री यात्रा की योजना की अर्जी को कोलम्बस ने स्पेनिश दरबार में पेश किया। पहले तो इस योजना को खारिज कर दिया गया लेकिन सन् 1492 में सम्राट फर्डीनाण्ड और सम्राज्ञी आइजाबेला (स्पेन) अन्ततः इस योजना को संरक्षण प्रदान करने पर सहमत हो गए तथा क्रिस्टोफर कोलम्बस को धनराशि और जलपोत उपलब्ध करा दिया।

12 अक्तूबर 1492 को क्रिस्टोफर कोलम्बस कैरीबियन सागर में अवस्थित एक छोटे-से द्वीप पर पहुँचा। उन्होंने इसका नाम सैन सल्वाडोर रखा। इस दिन को अमेरिका में कोलम्बस दिवस के रूप में मनाया जाता है। कोलम्बस आश्वस्त था कि वह भारत पहुँच गया है इसलिए उसने यहाँ के देशज निवासियों को भारतीय मान लिया। नाविकों के इस दल ने आगे क्यूबा और हिस्पानिओला (हैती और डोमिनिकन गणराज्य) के तट के अनुदिश यात्रा की लेकिन सैण्टा मारिया जहाज हैती की एक चट्टान से टकराकर नष्ट हो गया। अपनी उपलब्धियों को सिद्ध करने के लिए कोलम्बस ने कुछ स्थानीय बन्दियों के साथ अपनी स्पेन-वापसी की यात्रा आरम्भ की। ऐतिहासिक दस्तावेज बताते हैं कि कोलम्बस यहाँ पहुँचने वाला पहला यूरोपीय व्यक्ति नहीं था, बल्कि उससे भी सैकड़ों साल पहले विकिंग्स यहाँ पहुँच चुका था। परवर्ती काल में कोलम्बस ने इस नयी दुनिया की तीन यात्राएँ और भी कीं। कोलम्बस ने जमैका का अन्वेषण किया और हैती में स्पेनी बस्ती बसायी। हैती में

क्रिस्टोफर कोलम्बस की समुद्री यात्रा का ऐतिहासिक घटनाक्रम

सितम्बर 1492 : कोलम्बस ने अपनी यात्रा सैण्टा मारिया नामक जलपोत में पैलोस, स्पेन से प्रारम्भ की

⇩

पिण्टा और निना नामक दो अन्य जलपोत भी साथ-साथ गए

⇩

अनुकूल दशा के अन्तर्गत कैनारी पहुँचे

⇩

सरगासो समुद्र के पास मौसम की दशाएँ परिवर्तित हो गयीं

⇩

नाविकगण असन्तुष्ट हो गए

⇩

गलत भूमि चिन्हांकित की गयी

⇩

12 अक्टूबर 1492 को विटलिंग के द्वीप (बहामा) पर पहुँचे
(उन्होंने खोजे गए इस द्वीप का नाम सैन सल्वाडोर रखा और यह मान लिया कि यह भारत और चीन के लिए एक गलियारा है)

⇩

क्यूबा पहुँचे

⇩

सैण्टा मारिया जहाज डूब गया (हिस्पानिओला के तट पर)। कोलम्बस ने इस नयी दुनिया में पहली स्पेनी बस्ती बसायी।

⇩

स्पेन के पैलोस के लिए वापसी की यात्रा आरम्भ की

⇩

5 मार्च, 1493, नयी दुनिया की खोज के समाचार के साथ कोलम्बस स्पेन में पैलोस वापस पहुँचा

मूल निवासियों (ताइनो) को स्वर्ण खोजने के लिए बाध्य किया गया। दक्षिणी अमेरिका में स्पेनी बस्ती की दशा को लेकर कोलम्बस की आलोचना की गयी और इस सम्बन्ध में एक जाँच का आदेश दिया गया। अपनी परवर्ती यात्राओं में कोलम्बस ने वेनेजुएला, होण्डुरास, निकारागुआ, कोस्टा रिका और पनामा आदि के तटों का अन्वेषण किया। 1506 ई. में कोलम्बस की मृत्यु हो गयी।

17.7 वास्कोडिगामा – समुद्री यात्राएँ

वास्को डि गामा का जन्म सन् 1460 ई. में पुर्तगाल के साइनेस (Sines) में एक कुलीन परिवार में हुआ था। वह भौगोलिक खोज के युग के सर्वाधिक सफल अन्वेषकों में से एक था। वह पहला यूरोपीय व्यक्ति था जिसने भारत और यूरोप के बीच के जलीय व्यापार मार्ग की खोज की थी। जलमार्ग द्वारा की गयी अपनी इस यात्रा में वास्को डि गामा ने आशा अन्तरीप के चारों ओर चक्कर लगाया। वास्को डि गामा की इस यात्रा ने अरबवासियों के एकाधिकार को समाप्त कर दिया तथा मसालों और अन्य वस्तुओं के व्यापार के लिए भारत जाने का एक नया मार्ग उत्पन्न कर दिया।

वास्को डि गामा के प्रारम्भिक जीवन के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है लेकिन यह सिद्ध कर दिया गया है कि वह समुद्री वातावरण में रहता था और नौकायन, मछली पकड़ने और तैरने की वांछनीय कलाओं का उसे ज्ञान था। उसने नौ-परिवहन, खगोलिकी, गणित, ज्यामिति, भौतिकी और विभिन्न भाषाओं का अध्ययन किया था। तेईस वर्ष की अवस्था में वह एक नौसैनिक अधिकारी बन गया था। पश्चिमी अफ्रीकी तट और अन्य क्षेत्रों में फ्रांसीसी आक्रमणों के विरुद्ध पुर्तगाली हितों की रक्षा करने में उसने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। एशिया जाने वाले नए समुद्री व्यापार मार्ग को खोलने वाली समुद्री यात्रा का नेतृत्व करने के लिए उसके पिता को चयनित किया गया था। उसके पिता के इस चयन ने वास्को डि गामा के अन्वेषक बनने के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित कर दिया। वास्को डि गामा की समुद्री यात्रा के ऐतिहासिक घटनाक्रम का विकास नीचे दिया गया है :

वास्कोडिगामा की समुद्री यात्रा

1497 : पिता की मृत्यु के बाद वह अभियान का कमाण्डर बना

⇩

चार जलपोतों के साथ उसने टागुस बन्दरगाह (लिस्बन) से अपनी यात्रा शुरू की

⇩

अभियान का नेतृत्व गामा बन्धु, पाउलो, वास्को और निकोलाओ कर रहे थे

⇩

आशा अन्तरीप (अफ्रीका) का चक्कर लगाते हुए यह दल नटाल के तट पर पहुँचा

⇩

ये लोग जम्बेजी के मुहाने पर पहुँचे। अरबवासियों ने गामा के जलपोत पर आक्रमण कर दिया

⇩

मोजाम्बिक (एक अफ्रीकी देश) में उतरे

⇩

मई, 1498 में कालीकट, भारत पहुँचे

⇩

5 अक्टूबर 1498 को पुर्तगाल वापस जाने के लिए यात्रा प्रारम्भ की

⇩

सितम्बर 1499 में पुर्तगाल वापस पहुँच गए।

भारत के लिए नए मार्ग की खोज करके जब वास्को डि गामा वापस पुर्तगाल पहुँचा तो उसे "हिन्द महासागर का एडमिरल" घोषित किया गया। सन् 1502 में पुर्तगाल के सम्राट मैनुएल प्रथम के आदेश पर उसने भारत की दोबारा यात्रा की। पुर्तगाल वापस पहुँचकर गामा भारतीय मामलों में सम्राट का सलाहकार बन गया।

सन् 1519 में गामा को "काउण्ट" की उपाधि प्रदान की गयी और वह भारत का पुर्तगाली वायसराय बन गया। सन् 1524 में भारत में कोचीन के मालाबार तट पर उसकी मृत्यु हो गयी।

17.8 भारत, चीन और व्यापार मार्ग

हालिया प्रतिवेदन इस बात की तरफ इशारा करते हैं कि ऐतिहासिक व्यापार मार्गों (रेशम मार्ग) के क्षेत्र को पुनर्जीवित करके हिन्द महासागर क्षेत्र में चीन अपने सैन्य प्रभाव को बढ़ाना चाहता है। अभिलेखों के अनुसार, दूसरी शताब्दी ई. पू. में भारत, फारस, अरब और यूरोप

के साथ रेशम का व्यापार करने के लिए चीन समुद्री मार्ग का प्रयोग किया करता था। यूरोप, मध्य-पूर्व, मध्य एशिया, दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ आर्थिक सहयोग का गुट बनाकर चीन अपने नए रेशम मार्ग की योजना के माध्यम से इस मार्ग को पुनर्जीवित करना चाहता है।

सम्पूर्ण एशिया को घेरते हुए और यूरोप तक जाने वाले मार्ग का विकास करके चीन एक समानान्तर व्यापार संजाल (नेटवर्क) विकसित करना चाहता है। इस समुद्री रेशम मार्ग के माध्यम से चीन एशिया-प्रशान्त क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। चीन आधारिक संरचना में निवेश करना चाहता है ताकि हिन्द महासागर में और इसके परे भी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी नेवी (पीएलएएन - प्लान) के अड्डे विकसित किए जा सकें। दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में चीन अस्त्र-शस्त्र, खाद्य और ईंधन की विश्वसनीय आपूर्ति सुनिश्चित करना चाहता है। यहाँ तक कि चीन की "वन बेल्ट एण्ड वन रोड" (ओबीओआर – ओबोर) परियोजना भी इन्हीं उद्देश्यों के लिए ही है।

भारत ने मसाला परियोजना प्रारम्भ करने की एक रणनीति बनायी है। भारत ने "मौसम (मसाला मार्ग)" परियोजना शुरू की है। इसके लिए पचास से अधिक देशों की पहचान की गयी है। सूरीनाम, ट्रिनिडाड, टोबैगो, मारीशस और अन्य अफ्रीकी देशों, फिजी और प्रशान्त क्षेत्र के बारह अन्य देशों तथा दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों के साथ भारत उच्चस्तरीय राजनयिक संलग्नता का निर्माण कर रहा है। अपनी ऐतिहासिक, धार्मिक और नृजातीय सहलग्नताओं को भारत उसी तरह पुनर्जीवित करना चाहता है, जैसी वे मसालों के व्यापार वाले काल में थीं। हिन्द महासागर (पूर्वी अफ्रीका, अरब के प्रायद्वीप, भारतीय उपमहाद्वीप, श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशियाई द्वीपसमूह) में सांस्कृतिक विविधता, वाणिज्यिक और धार्मिक अन्तरक्रियाओं के दस्तावेजीकरण के लिए ऐतिहासिक और पुरातात्विक अनुसन्धान किए जाने वाले हैं। इन परियोजनाओं और गतिविधियों के जरिये भारत अपने सांस्कृतिक लगाव को और अधिक गहरा करना चाहता है, सामुद्रिक सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहता है तथा आर्थिक सम्पर्क को विस्तृत करना चाहता है। भारत की "मसाला मार्ग परियोजना" चीन की "रेशम मार्ग परियोजना" का एक राजनयिक जवाब है।

बोध प्रश्न 3

1) एक अन्वेषक के रूप में क्रिस्टोफर कोलम्बस की क्या भूमिका है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) वास्को डि गामा द्वारा जिस मार्ग की यात्रा की गयी थी, उसका वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

17.9 सारांश

वस्तुओं का परिवहन उनके उत्पादन स्थलों से उनकी खपत वाले स्थलों तक व्यापार मार्गों के जरिये किया जाता था। मानव सभ्यता के इतिहास में रेशम मार्ग और मसाला मार्ग दो सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यापार मार्ग हैं। इन व्यापार मार्गों से सिर्फ वस्तुओं का ही परिवहन नहीं किया गया बल्कि यह मार्ग ज्ञान, तकनीक, धर्म और कलाओं के लिए भी एक प्रमुख माध्यम बना। "खोज के युग" (अन्वेषण) ने अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका और एशिया के बीच महत्वपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध उत्पन्न किए। ऐसे अन्वेषण ने सम्पूर्ण विश्व के राजनीतिक और सामाजिक ढाँचे को प्रभावित किया। व्यापार मार्गों और अपने स्थापित उपनिवेशों पर नियन्त्रण के लिए ही पुर्तगाली, डच, अंग्रेज आदि एक-दूसरे से लड़ते रहते थे। व्यापार मार्ग बाजारों और मेलों की स्थापना के लिए उत्तरदायी थे। व्यावसायिक पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन, ऐतिहासिक पर्यटन, विरासत पर्यटन, साहसिक पर्यटन आदि की परिघटनाएँ व्यापार मार्गों के विकास के कारण ही अस्तित्व में आयीं। मसालों का व्यापार शेष विश्व में भारतीय भोजन के प्रसार के लिए उत्तरदायी था। मसालों का मूल्य और उनकी खोज भूमण्डलीकरण के प्रारम्भिक संचालक थे। मध्यकाल में वैश्विक आर्थिक संजाल (नेटवर्क) के निर्माण के लिए मसाले जिम्मेदार थे। मसाले ऐसी भूमण्डलीय वस्तु थे जिसके साथ उपभोक्ताओं और उत्पादकों के बीच सम्बन्धों की जटिल श्रृंखला मौजूद हुआ करती थी। मसालों की वैश्विक माँग ने क्रिस्टोफर कोलम्बस और वास्कोडिगामा को खतरनाक समुद्री यात्राएँ शुरू करने के लिए प्रेरित किया। अन्ततः इन यात्राओं का परिणाम यूरोपीय उपनिवेशवाद के रूप में सामने आया। दूसरी शताब्दी ई. पू. में भारत, फारस, अरब और यूरोप के साथ रेशम का व्यापार करने के लिए चीन समुद्री मार्ग का प्रयोग किया करता था। यूरोप, मध्य-पूर्व, मध्य एशिया, दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ आर्थिक सहयोग का गुट बनाकर चीन अपने नए रेशम मार्ग की योजना के माध्यम से इस मार्ग को अब पुनर्जीवित करना चाहता है। चीन की रेशम मार्ग की रणनीति का प्रत्युत्तर भारत अपनी मसाला परियोजना के माध्यम से दे रहा है। भारत ने "मौसम (मसाला मार्ग)" परियोजना शुरू की है। इसके लिए पचास से अधिक देशों की पहचान की गयी है।

17.10 शब्दावली

खोज का युग : इसे अन्वेषण के युग के रूप में भी जाना जाता है। यह वह समयावधि है जब यूरोपीय लोगों ने नए स्थलों और नए गन्तव्यों आदि का अन्वेषण किया।

व्यापार मार्ग : उत्पादन केन्द्रों से खपत वाले केन्द्रों तक माल के परिवहन में प्रयुक्त होना वाला मार्ग।

मसाला मार्ग : इसे "समुद्री रेशम मार्ग" भी कहा जाता है। यह पूरब को पश्चिम से जोड़ने वाला समुद्री मार्ग तन्त्र (नेटवर्क) है।

रेशम मार्ग : प्राचीन काल का सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यापार मार्ग, जो रेशम, स्वर्ण, चाँदी, ऊन और अन्य वस्तुओं के व्यापार के लिए चीन को रोम से जोड़ता था।

क्रिस्टोफर कोलम्बस : एक अन्वेषक जो भारत की खोज करना चाहता था, लेकिन जिसने गलती से अमेरिका को खोज निकाला।

वास्को डि गामा : एक अन्वेषक जिसने आशा अन्तरीप (अफ्रीका) के चारों चरफ चक्कर लगाते हुए भारत तक जाने का मार्ग खोजा।

17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 17.3 देखिए।

2) उपभाग 17.3.1 और 17.3.2 देखिए।

3) उपभाग 17.3.1.1 और 17.3.1.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 17.4.1 और 17.4.5 देखिए।

2) उपभाग 17.4.7 देखिए।

3) भाग 17.5 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 17.6 देखिए।

2) भाग 17.7 देखिए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इस खंड के लिए उपयोगी कुछ पुस्तकें और शोध पत्र

फ्रैंक और ब्रोनस्टोन "द सिल्क रोड, ए हिस्ट्री"।

रत्नागर "ट्रेडिंग एकाउण्टर्स" - ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, न्यू प्रेस, 2004।

एंशियंट वाराणसी, जायसवाल, आर्यन बुक्स इण्टरनेशनल 2005।

काशी का इतिहास, डॉ. मोतीचन्द्र, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा. लि., मुम्बई।

हिस्ट्री ऑफ बनारस, अल्टेकर, ए.एस., द कल्चर पब्लिकेशन हाउस, बीएचयू, 1937।

दि एंशियंट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया : वाराणसी, ए कनिंघम, इण्डोलोजिकल बुक हाउस, 1969।

द रिलीजन ऑफ इण्डिया : वाराणसी, बर्थ ए, द चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, 1963।

सी. कूपर, जे. फ्लेचर, ए. फायल, डी. गिल्बर्ट, एस. वानहिल, 2008, टूरिज्म : प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस, फोर्थ।

बटलर (सम्पा.) टूरिज्म रिसर्च : क्रिटीक्स एण्ट चैलेंजेज, रूटलेज, लन्दन।

रॉब डेविडसन : टूरिज्म : लन्दन, 1993।

राबर्ट क्रिटी मिल : टूरिज्म सिस्टम : न्यू जर्सी, 1992।

डोनाल्ड लुण्डबर्ग : टूरिस्ट बिजिनेस, न्यूयार्क, 1990।

डेविड डब्ल्यू होवेल : पासपोर्ट : ऐन इण्ट्रोडक्शन टू द ट्रैवेल एण्ड टूरिज्म, ओहायो, 1989।

गोएल्डनर, सी.आर. एण्ड रिची, जे.आर.बी. (2006), टूरिज्म, प्रिंसिपल्स, प्रैक्टिसेज एण्ड फिलासोफीज (दसवाँ संस्करण), न्यू जर्सी : जॉन विले एण्ड सन्स।

ग्रैबर्न, एन., एण्ड जाफरी, जे. (1991), इण्ट्रोडक्शन : टूरिज्म एण्ड द सोशल साइंसेज, एनल्स ऑफ टूरिज्म रिसर्च, 18(1), 1-11।

इस खंड के लिए गतिविधियाँ

टिप्पणी : गतिविधियों के परिणामों पर अपने परामर्शदाता (काउन्सिलर) के साथ चर्चा कीजिए।

गतिविधि 1

अपने नगर/कस्बे की यात्रा कीजिए और निम्नलिखित ऐसी चीजों की एक सूची बनाइये जो कम से कम सौ साल पुरानी हों :

क) मन्दिर

ख) मस्जिद

ग) निम्नलिखित श्रेणी की इमारतें :

i) सराय

ii) सीढ़ीदार कुआँ

iii) पुल

गतिविधि 2

समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में तकनीक और उपकरणों के बारे में प्रकाशित खोजों और आविष्कारों को पढ़िए। इसके प्रभावों को समझने का प्रयास कीजिए।

गतिविधि 3

अपने निकटवर्ती क्षेत्र के कार्यालय में जाइए और अपने क्षेत्र की विकास योजना से जुड़े साहित्य को खोजिए। अपने क्षेत्र के नगरीकरण की प्रक्रिया और इसके निहितार्थों का पता लगाइए।

गतिविधि 4

किसी संग्रहालय में जाइए और वहाँ व्यापार मार्गों और समुद्री यात्राओं से सम्बन्धित प्रदर्शित सामग्री का पता लगाइए।

गतिविधि 5

अपने मित्रों के साथ स्थानीय बाजार की एक यात्रा कीजिए। बाजार में उपलब्ध मसालों और उनके स्रोतों का वर्णन कीजिए।

गतिविधि 6

रोमन साम्राज्य, इसके योगदान और इसके पतन पर अपने मित्रों या सहकर्मियों के सामने पन्द्रह मिनट का एक व्याख्यान दीजिए।